भारत के तीर्थ

प्रमुख तीर्थों की यात्रा का रोचक वर्णन

सम्पादक
यशपाल जैन

•

१६६६
सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

● प्रकाशक — मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

● संस्करण — पहला : १९५९

● मूल्य — चार रुपये

● मुद्रक — सरोरवाल प्रेस
दिल्ली

प्रकाशकीय

तीर्थ-यात्रा का अपना आनन्द और अपना लाभ होता है। यही कारण है कि देश के कोने-कोने से हजारों लोग दूर-पास के तीर्थों की यात्रा करने जाते हैं। द्वारिका, प्रयाग, हरिद्वार, चित्रकूट, पुष्कर, पंढरपुर, रामेश्वर, दक्षिण की काशी कोल्हापुर तथा आदि-गुरु शंकराचार्य की जन्मभूमि कालटी के नाम किसने नहीं सुने होंगे! बहुतों ने इनकी या इनमें से कई तीर्थों की यात्रा भी की होगी।

हमारा देश धर्म-परायण देश है और जबतक धर्म है, तबतक तीर्थों का महत्व रहेगा। उनकी यात्रा करने से हमें एक और भी तो फायदा होता है। हमें अपने देश को देखने का अवसर मिलता है। बिना देश को देखे हम उसके प्रति अपने कर्तव्य का लगन से कैसे पालन कर सकते हैं।

हमें आशा है कि आपको इस पुस्तक के पढ़ने से बहुत से तीर्थों की यात्रा का घर-बैठे आनंद मिलेगा।

—मंत्री

विषय-सूची

●

द्वा र का

: १ :

हमारा देश बहुत बड़ा है। इसमें कितने ही स्थान इतने सुन्दर हैं कि देखकर हर्ष होता है। यहां बर्फ से ढंके ऊंचे-ऊंचे पहाड़ हैं, लहलहाते खेत और हरे-भरे मैदान हैं। समुद्र के किनारे हैं, जिनपर खड़े होकर लहरों के उठने और गिरने को देखने से मन नहीं भरता। ऐसी ही सुन्दर जगहों पर बहुत-से तीर्थ बनाये गए हैं। इसलिए कि हम इस धरती की सुन्दरता को देखें, साथ ही इस धरती को बनानेवाले भगवान की लीला के भी दर्शन करें।

ऐसे बहुत-से तीर्थ हमारे इस देश में हैं। द्वारका भी ऐसा ही एक तीर्थ है। यह दूर पश्चिम में समुद्र के किनारे पर बसी है। आज से हजारों साल पहले भगवान कृष्ण ने इसे बसाया था। द्वारका का नाम सुनते ही एक पुराना जमाना आंखों के आगे घूम जाता है। कृष्ण मथुरा में पैदा हुए, गोकुल में पले, पर राज उन्होंने इस द्वारका में ही किया। यहीं बैठकर उन्होंने सारे

देश की बागडोर अपने हाथ में संभाली। पांडवों को सहारा दिया। धर्म की जीत कराई और जरासंध, शिशुपाल और दुर्योधन जैसे अधर्मी राजाओं को मिटाया। द्वारका उस जमाने में राजधानी बन गई थी। बड़े-बड़े राजा यहां आते थे और बहुत-से मामलों में भगवान कृष्ण की सलाह लेते थे।

आज भी द्वारका की महिमा है। यह चार धामों में एक धाम है। सात पुरियों में एक पुरी है। इसकी सुन्दरता बखानी नहीं जाती। समुद्र की बड़ी-बड़ी लहरें उठती हैं और इसके किनारों को इस तरह धोती हैं, जैसे इसके पैर पखार रही हों। जब संध्या के समय सूर्य डूबता है तो इस नगरी का रूप निखर उठता है और जब पीली-पीली किरणें समुद्र के नीले पानी पर अठखेलियां करती हैं तो ऐसा लगता है, मानो स्वयं भगवान कृष्ण ही पीली चादर ओढ़े सो रहे हों। सूर्य की किरणें द्वारका के ऊंचे-ऊंचे मन्दिरों पर पड़ती हैं तो उनके सोने के कलश जगमगा उठते हैं। समुद्र की गर्जन ऐसी लगती है, जैसे कोई बड़े उत्साह से मृदंग बजा रहा हो।

पहले तो मथुरा ही कृष्ण की राजधानी थी। पर मथुरा उन्होंने छोड़ दी और द्वारका बसाई। इतनी

दूर, सैकड़ों कोस दूर । कुछ तो समुद्र-किनारे की सुन्दरता उन्हें भा गई और कुछ दूसरे कारण भी पैदा हो गये । कृष्ण ने कंस को मारा था । कंस का बदला लेने के लिए उसके ससुर जरासंध ने मथुरा पर हमला कर दिया । जरासंध मगध का राजा था । उस समय के राजाओं में वह सबसे बलवान था । महाभारत में लिखा है कि इसने बीस हजार आठ सौ राजाओं को पकड़कर अपनी जेल में बन्द कर लिया था । एक बहुत बड़ी फौज को लेकर इसने मथुरा को आ घेरा । पर कृष्ण और बलराम ने इसे हराकर भगा दिया । वह फिर चढ़ आया । फिर हारकर भागा । इस तरह उसने सत्तरह हमले किये । मथुरा के लोग तंग आ गये । गांव उजड़ गये । खेती का नाश हो गया । सबने कृष्ण से कहा कि महाराज कहीं ऐसी जगह चला जाय, जहां जरासंध न पहुंच सके और प्रजा सुख से अपना काम-काज कर सके । कृष्ण ने सोच-विचारकर दूर पश्चिम में जाने का निश्चय किया । समुद्र का यह किनारा उन्हें पसंद आया । उन्होंने विश्वकर्मा को आज्ञा दी और बात-की-बात में एक विशाल नगर बनाकर खड़ा कर दिया गया ।

द्वारका के कितने ही महल सोने और चांदी से बनाये गए थे । दीवारों में हीरे और मोती जड़े गए थे

और नीलम से तरह-तरह की तस्वीरें उनपर बनाई गई थीं। बाकी महल पत्थर के थे। आज भी द्वारका से कुछ दूर पोरबन्दर नामक नगर में पत्थर का बड़ा सुन्दर काम होता है। यहां कारीगर पत्थर को इस तरह चीरते हैं, जैसे बढ़ई लकड़ी को चीरते हैं। द्वारका के चारों ओर एक बहुत ऊंचा परकोटा तैयार किया गया था, जिसमें चार दरवाजे थे। इसीलिए इस नगरी का नाम रखा गया था 'द्वारका' यानी 'दरवाजोंवाली नगरी।' जब भगवान कृष्ण को पता लगा कि नगर बनकर तैयार हो गया है तब वह यादवों और उनके परिवारों के साथ द्वारका की ओर चल दिये।

दूर का रास्ता था। महीनों चलना पड़ा होगा। तब कहीं द्वारका पहुंचे होंगे। आखिरी पड़ाव जहां पड़ा, वह जगह अब भी है। उसे 'मूल द्वारका' कहते हैं। हो सकता है कि यहांपर द्वारका के बनानेवाले विश्वकर्मा ने कृष्ण का स्वागत किया हो। इस 'मूल द्वारका' में बहुत-से छोटे-छोटे मन्दिर हैं। द्वारका की यात्रा करनेवाले यहां जरूर आते हैं। यहां के मन्दिरों के दर्शन करके ही आगे जाते हैं।

कृष्ण से पहले इस देश का राजा दूसरा था। उसका नाम था रैवतक। उसके नाम पर यहां एक पहाड़ का

नाम भी रैवतक पर्वत पड़ गया था। यह पर्वत कृष्ण को बड़ा प्यारा था और वह यहां हर साल आकर कुछ दिन रहा करते थे। राजा रैवतक ने अपनी लड़की रेवती का विवाह बलराम के साथ कर दिया था और स्वयं जंगलों में तपस्या करने चला गया था। द्वारका में बसने के बाद यादवों की बहुत-सी चिंता खत्म हो गई। सब शांति से रहने लगे। किसीके हमले और झगड़े का डर उन्हें नहीं रहा।

द्वारका समुद्र के किनारे एक बहुत बड़ा बन्दरगाह बन गई। आज भी द्वारका एक अच्छा बन्दरगाह है। दूसरे देशों से द्वारका के रहनेवाले व्यापार करने लगे। हीरे, मोती और तरह-तरह की दूसरी चीजें उन देशों से यहां आने लगीं। कुछ ही दिनों में द्वारका बड़ी धनी नगरी बन गई। बहुत-से लोग सोचते हैं कि जहाज हाल में ही बने हैं। पहले नहीं थे। कुछ यह भी सोचते हैं कि दूर-दूर के देशों से पहले व्यापार नहीं होता था। बात ऐसी नहीं है। हमारे देश के बहुत-से लोग दुनिया के कोने-कोने में घूमे थे। सबसे उनका लेन-देन था। तभी तो महाभारत की लड़ाई में सिर्फ हिन्दुस्तान के राजा ही नहीं, दूसरे देशों के राजा भी शामिल हुए थे। इस व्यापार से द्वारका का नाम सब कहीं फैल गया।

इसके साथ ही हमारे देश की सभ्यता भी दूर-दूर देशों में गई। दूसरी जातियों ने भी उसे अपनाया।

श्रीकृष्ण ने कंस को मारकर मथुरा का राज अपने हाथ में लिया था। वह सबके थे। सबसे उन्हें प्रेम था। इसलिए उनका राज करने का ढंग भी कंस और जरासंध जैसे राजाओं से बिल्कुल अलग था। कंस और जरासंध मनमानी करनेवाले राजा थे। उधर कृष्ण ने अपनेको राजा कहलाना भी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कंस के पिता उग्रसेन को राजा बनाया। फिर एक सभा बनाई, उसी तरह जिस तरह आजकल हमारे देश में संसद है। इस सभा के सभी सदस्य प्रजा ही चुनती थी। इस सभा के कहने के अनुसार राजा उग्रसेन फैसला करते थे, राज-काज चलाते थे। स्वयं तो कृष्ण बस एक सलाहकार थे। वह राजा और उसकी सभा की सहायता किया करते थे। यादवों के इस गणतंत्र या प्रजातंत्र को प्रजा स्वयं चलाती थी। यहां न कोई राजा था और न कोई उसकी प्रजा। सबका अपना ही राज था।

द्वारका की सुख-शांति को देखकर दूर-दूर से ऋषि-मुनि यहां आया करते थे। नगर के पास जंगलों में रहकर वे तप और यज्ञ करते थे। प्रभास द्वारका के पास ऐसी ही एक जगह है। कहते हैं, किसी जमाने

में यहां चन्द्रमा ने बड़ा भारी तप किया था। शिवजी ने खुश होकर उसको दर्शन दिये। सोमनाथ का मन्दिर उसी तप की यादगार है। इसके सिवा दुर्वासा ऋषि भी यहां आकर रहे थे और दूसरे कितने ही ऋषि भी यहां अक्सर आया करते थे। यादवों का इस स्थान पर हर साल बड़ा भारी मेला भरता था। इस मेले की रौनक को देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते थे। अर्जुन भी एक बार यहां आया था। तभी कृष्ण ने अपनी बहन सुभद्रा का विवाह उसके साथ किया था।

द्वारका का काम राजा उग्रसेन को संभलवाकर कृष्ण ने दूसरे बड़े कामों की ओर ध्यान दिया। जिस तरह गांधीजी ने देश के कोने-कोने में जाकर कितनी ही लड़ाइयां लड़ीं, इसी तरह कृष्ण ने शिशुपाल और जरासंध जैसे अत्याचारी राजाओं को मारने के लिए बहुत-से युद्ध किये। पांडवों को उन्होंने अपना साथी बनाया। राजा युधिष्ठिर ने कृष्ण की सलाह से और अपने भाइयों की मदद से सारी धरती को जीता। अश्वमेध-यज्ञ किया और धरती पर धर्म का राज स्थापित किया। भगवान कृष्ण का सपना पूरा हुआ। पर युधिष्ठिर ने कुछ ही दिनों बाद एक गलती कर डाली, जिससे सारा बना-बनाया खेल बिगड़ गया।

उन्होंने दुर्योधन के साथ जुआ खेला और सब-कुछ हार गये। तेरह वर्ष के लिए पांडव वनवास में चले गये। इसी बीच दुर्योधन ने अपनी ताकत खूब बढ़ा ली। जब पांडव वनवास से लौटे तो उसने उनका राज वापस देने से इंकार कर दिया। अब दो ही रास्ते सामने रह गये। या तो दुर्योधन के साथ लड़ा जाय या चुपचाप जंगलों में जाकर तप किया जाय। कृष्ण ने डरकर भागने के बदले लड़कर जान देने की सलाह दी। दोनों तरफ से भारी तैयारी की गई। कृष्ण अर्जुन के सारथी बने। कृष्ण की कृपा से पांडव ही इस लड़ाई में जीते। दुर्योधन और उसके सब साथी मारे गए। भारत में पांडवों का राज हो गया। धर्म की जीत हुई।

ये सब इतने बड़े काम थे कि कृष्ण को बहुत वर्षों तक द्वारका के बाहर रहना पड़ा। इधर द्वारका के रहने-वाले सुख और चैन में मस्त थे। उनके पास खूब धन था। वे जी भरकर आनन्द मनाते थे। उनके परिवार खूब बढ़ रहे थे। जितने बर्तन अधिक होते हैं, उतने ही आपस में टकराते हैं। जितने आदमी बढ़ गये उतने ही आपस के झंझट भी बढ़ने लगे। भगवान कृष्ण का नाम बहुत बढ़ गया था। साथ ही यादवों का नाम भी बहुत ऊंचा हो गया। इससे यादवों को बड़ा घमंड हो गया।

वे ऋषि-मुनियों तक की परवाह नहीं करते। किसी-का भी अपमान करते वे डरते नहीं थे। इसका नतीजा बड़ा भयानक हुआ। सदा की तरह एक बार प्रभास तीर्थ में उनका मेला भरा। सारी द्वारका वहां इकट्ठी हुई। एक मामूली-सी बात पर आपस में तनातनी हो गई। कृष्ण और बलराम में से कोई भी उस समय वहां न था। झगड़ा बढ़ता गया। मारकाट मच गई। सारे यादव कुछ ही समय में कट-मरे।

महाभारत में इस घटना का वर्णन इस प्रकार है। गान्धारी कौरवों की मां थी। जब उसने अपने बेटों का मरना देखा तो उसने कृष्ण को शाप दे डाला। उसने कहा, "हे कृष्ण, जिस तरह मेरा वंश खत्म हुआ, उसी तरह तेरा भी होगा।" कुछ ही दिनों बाद की बात है। द्वारका के बाहर बहुत-से ऋषि-मुनि आये हुए थे। वे वहां तप कर रहे थे। साम्ब आदि कृष्ण के कई बेटों ने सोचा कि देखें ये साधु लोग कुछ ज्ञान भी रखते हैं या नहीं। साम्ब बड़ा सुंदर था। उसने स्त्री का वेश बनाकर अपने पेट पर बहुत-सा कपड़ा लपेट लिया। ये सब लड़के ऋषियों के सामने जा पहुंचे और पूछने लगे कि महाराज, बताइये इस औरत के पेट से क्या पैदा होगा। ये साधु मन की बात जान लेते थे। उन्होंने समझ

लिया कि ये लड़के हमसे मजाक कर रहे हैं। उनमें से एक थे महर्षि वृन्द। उनको बड़ा क्रोध आया। उन्होंने शाप दिया कि इस औरत के पेट से जो चीज पैदा होगी, उससे सारे यादव आपस में कटकर मर जायंगे।

बच्चों का यह विनोद ही सारे कबीले के गले की फांसी बन गया। कुछ दिन बाद साम्ब के पेट से लोहे का एक छोटा-सा मूसल निकल पड़ा। सबने सलाह करके इस मूसल का चूरा करके समुद्र में फिकवा दिया। यह चूरा बहता-बहता प्रभास तीर्थ तक पहुंच गया। वहां लहरों ने इसे जमीन पर फेंक दिया। इस मूसल के चूरे से किनारे पर लम्बी-लम्बी घास उग आई। कुछ दिनों बाद सारे यादव प्रभास तीर्थ नहाने आये। नहाते-नहाते उनमें आपस में झगड़ा हो गया। झगड़ा इतना बढ़ा कि मार-काट मच गई। किनारे की घास तलवार की धार की तरह तेज़ थी। सबने उसे उखाड़ लिया और एक दूसरे को मारने लगे। मौत ने सबको अन्धा बना दिया था। एक भी यादव जिन्दा न बचा। जब कृष्ण और बलराम वापस आये तो यह हाल देखकर बहुत दुःखी हुए।

: २ :

अब द्वारका एक छोटा-सा कस्बा है। यहां बहुत-सी धर्मशालाएं हैं। जरूरत की सभी चीजें आसानी से यहां मिल जाती हैं। कस्बे के एक हिस्से के चारों ओर चहार-दीवारी खिंची है। इसके भीतर ही सारे बड़े-बड़े मन्दिर हैं। द्वारका के दक्षिण में एक लम्बा ताल है। इसे गोमती-तालाब कहते हैं। समुद्र के पानी से यह भरा रहता है। इसमें नहाने का बड़ा पुण्य माना जाता है। इसके नाम पर ही द्वारका को गोमती द्वारका कहते हैं।
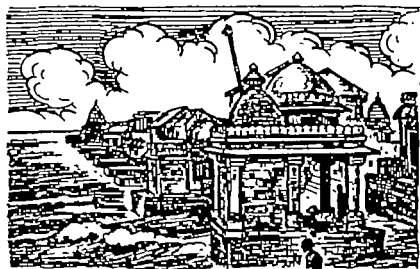
द्वारका के समुद्र-तट के घाटों का दृश्य

इस गोमती तालाब के ऊपर नौ घाट हैं। इनमें

सरकारी घाट के पास एक कुण्ड है, जिसका नाम निष्पाप कुण्ड है, इसमें गोमती का पानी भरा रहता है। नीचे उतरने के लिए पक्की सीढ़ियां बनी हैं। यात्री सबसे पहले इस निष्पाप कुण्ड में नहाकर अपनेको शुद्ध करते हैं। बहुत-से लोग यहां अपने पुरखों के नाम पर पिंड-दान भी करते हैं।

गोमती के दक्षिण में पांच कुंए हैं। निष्पाप कुण्ड में नहाने के बाद यात्री इन पांचों कुंओं के पानी से कुल्ले करते हैं। तब रणछोड़जी के मन्दिर की ओर जाते हैं। रास्ते में कितने ही छोटे मन्दिर पड़ते हैं—कृष्णजी, गोमती माता और महालक्ष्मीजी के मन्दिर। इन सबके दर्शन करते-करते यात्री रणछोड़जी के मन्दिर के फाटक पर पहुंच जाते हैं।

रणछोड़जी का मन्दिर द्वारका का सबसे बड़ा और सबसे बढ़िया मन्दिर है। भगवान कृष्ण को उधर रणछोड़जी कहते हैं। लोगों की भीड़ यहां इकट्ठी रहती है और मन्दिर का बड़ा घंटा बार-बार बजता रहता है। पुजारी जोर-जोर से मंत्र पढ़ते हैं। सामने ही कृष्ण भगवान की चार फुट ऊंची मूर्ति है। यह चांदी के सिंहासन पर विराजमान है। मूर्त्ति काले पत्थर की बनी है। हीरे-मोती इसमें चमचमाते हैं। सोने की ग्यारह

मालाएं गले में पड़ी हैं। कीमती पीले वस्त्र पहने हैं। भगवान के चार हाथ हैं। एक में शंख है, एक में सुदर्शन चक्र। एक में गदा और एक में कमल का फूल। सिर पर सोने का मुकुट है। लोग भगवान की परिक्रमा करते हैं और उनपर फूल और तुलसी-दल चढ़ाते हैं। मन्दिर का फर्श इतना चिकना है कि फिसलने का डर रहता है। यह इतना चमकीला है कि उसमें अपनी सूरत देख सकते हैं। चौखटों पर चांदी के पत्तर मढ़े हैं। मन्दिर की छत में बढ़िया-बढ़िया कीमती झाड़-फानूस लटक रहे हैं। एक तरफ ऊपर की मंजिल में जाने के लिए सीढ़ियां हैं। पहली मंजिल में अम्बा-देवी की मूर्त्ति है—ऐसी सात मंजिलें

रणछोड़जी का मन्दिर

हैं और कुल मिलाकर यह मन्दिर एक सौ चालीस फुट

ऊंचा है। इसकी चोटी आसमान से बातें करती है।

रणछोड़जी के दर्शन के बाद मन्दिर की परिक्रमा की जाती है। मन्दिर की दीवार दोहरी है। दो दीवारों के बीच इतनी जगह है कि एक आदमी समा सके। यही परिक्रमा का रास्ता है।

रणछोड़जी का मन्दिर बड़ा पवित्र माना जाता है। इसकी बड़ी महिमा है। मेवाड़ की महारानी मीरा कृष्ण की बड़ी भक्त थीं। वह कहती थीं, कृष्ण ही मेरे स्वामी हैं। अपने महल में उन्होंने मुरलीवाले का एक मन्दिर बनवाया था। वहीं वह रात-दिन अपने स्वामी की सेवा में लगी रहती थीं। रात-दिन गाना-नाचना और कीर्त्तन करना, यही उनका काम था। कुछ समय बाद उन्होंने मेवाड़ छोड़ दिया। वह मथुरा-वृन्दावन चली गईं। वहां से बड़े दुःख उठाती हुईं यहां द्वारका आईं और इसी रणछोड़जी के मन्दिर में भगवान के चरणों में रहने लगीं। कुछ ही दिनों बाद मेवाड़ के लोग अपनी रानी को लेने आये। मीरा जाना नहीं चाहती थीं। वह रणछोड़जी के सामने पहुंचकर रोने लगीं। भगवान हमेशा भक्तों की मनचाही करते हैं। उन्होंने मीरा को अपने अन्दर समा लिया।

रणछोड़जी के मन्दिर के सामने एक बहुत लम्बा-

चौड़ा १०० फुट ऊंचा जगमोहन है। इसकी पांच मंजिलें हैं और इसमें ६० खम्बे हैं। रणछोड़जी के बाद इसकी परिक्रमा की जाती है। इसकी दीवारें भी दोहरी हैं।

दक्षिण की तरफ बराबर-बराबर दो मंदिर हैं। एक दुर्वासाजी का और दूसरा बड़ा मन्दिर त्रिविक्रमजी का। यहां त्रिविक्रमजी को टीकमजी कहते हैं। इनकी बड़ी पूजा की जाती है। इनका मन्दिर भी बहुत सजा-धजा है। मूर्ति बड़ी लुभावनी है और कपड़े-गहने कीमती हैं। यहां के पंडे टीकमजी की कहानी बड़े प्रेम से सुनाते हैं। बताते हैं कि दुर्वासा ऋषि द्वारका में ही रहा करते थे। एक बार कुश नाम के एक राक्षस ने यहां के रहनेवालों को सताना शुरू कर दिया। जब कुश किसी भी तरह बस में न आया तो दुर्वासा ऋषि पाताल गये। वहां के राजा बलि से वह त्रिविक्रम भगवान को मांग लाये। त्रिविक्रमजी ने कुश को जमीन में गाड़ दिया और उसके ऊपर शिवजी की मूर्त्ति रखदी। तबसे शिवजी कुशेश्वर भगवान भी कहलाने लगे।

त्रिविक्रमजी के मन्दिर के बाद प्रद्युम्नजी के दर्शन करते हुए यात्री इन कुशेश्वर भगवान के मन्दिर में जाते हैं। मन्दिर में एक बहुत बड़ा तहखाना है। इसीमें शिव का लिंग है और पार्वती की मूर्त्ति है। पंडे कहते हैं कि

यही वह जगह है, जहां त्रिविक्रमजी ने कुश को धरती में गाड़ा था। यहांपर घी और लड्डू चढ़ाये जाते हैं।

कुशेश्वर शिव के मन्दिर के बराबर-बराबर दक्षिण की ओर छः मन्दिर और हैं। इनमें अम्बाजी और देवकी माता के मन्दिर खास हैं।

रणछोड़जी के मन्दिर के पास ही राधा, रुक्मिणी, सत्यभामा और जाम्बवती के छोटे-छोटे मन्दिर हैं। इनके दक्षिण में भगवान का भण्डारा है और भण्डारे के दक्षिण में शारदा-मठ है।

शारदा-मठ को गुरु शंकराचार्य ने बनाया था। उन्होंने पूरे देश के चार कोनों में चार मठ बनाये थे। उनमें एक यह शारदा-मठ है। यहां बड़े-बड़े ज्ञानी महात्मा रहते हैं और लोगों को धर्म का उपदेश करते हैं। शारदा-मठ में जाकर यात्री शंकराचार्यजी के कामों के बारे में सुनते हैं। शंकराचार्य में आत्मा की बड़ी भारी ताकत थी। वह उस समय पैदा हुए थे जब हिन्दू-धर्म की बुरी हालत थी। लोग पूजा-पाठ भूल चुके थे। भगवान में भी उनका विश्वास नहीं रह गया था। शंकराचार्य ने तेरह बरस की उम्र में सारे वेद-शास्त्र पढ़ डाले और संन्यासी हो गये। तब वह धर्म का प्रचार करने निकल पड़े। देश के कोने-कोने में जाकर इन्होंने लोगों को जगाया।

बहुत-सी किताबें इन्होंने लिखीं । यह सारा काम इन्होंने अट्ठाईस साल की उम्र में ही कर डाला । अट्ठाईस साल पूरे होते ही उनकी मृत्यु हो गई । इन्हींके बनाये हुए ये चार मठ आज भी विद्या का प्रचार करते हैं । दूर-दूर से विद्यार्थी यहां संस्कृत सीखने आते हैं ।

रणछोड़जी के मन्दिर से द्वारका शहर की परिक्रमा शुरू होती है । पहले सीधे गोमती के किनारे जाते हैं । गोमती के नौ घाटों पर बहुत-से मन्दिर हैं—सांवलियाजी का मन्दिर, ग़ोवर्धननाथजी का मन्दिर, महाप्रभुजी की बैठक । आगे वासुदेव घाट पर हनुमानजी का मन्दिर है । आखिर में संगम घाट आता है । यहां गोमती समुद्र से मिलती है । इस संगम पर संगम-नारायणजी का बहुत बड़ा मन्दिर है ।

यहां की शोभा निराली है । सामने ही समुद्र है । इसमें हमेशा ऊंची-ऊंची लहरें उठती रहती हैं । इस ओर गोमती है । ऐसा मालूम पड़ता है जैसे कि गोमती समुद्र की बेटी हो । दिन-रात में कई बार ज्वार-भाटा आता है । किनारे पर बहुत-से चक्र, कौड़ियां आदि चीजें पानी के उतर जाने पर पड़ी रह जाती हैं । यात्री चक्र को बड़ा पवित्र मानते हैं । पूजा करने के लिए उसे अपने साथ घर ले आते हैं ।

यात्री बेट-द्वारका जाते हैं। बेट-द्वारका के दर्शन के बिना द्वारका का तीर्थ पूरा नहीं होता। बेट-द्वारका पानी के रास्ते भी जा सकते हैं और जमीन के रास्ते भी।

जमीन के रास्ते जाते हुए तेरह मील आगे गोपी-तालाब पड़ता है। यहां की आस-पास की जमीन पीली है। तालाब के अंदर से भी पीले रंग की ही मिट्टी निकलती है। यात्री इसे बड़ा पवित्र मानते हैं और चन्दन की तरह इसे माथे पर लगाते हैं। इस मिट्टी को वे गोपीचंदन कहते हैं और इसे घर भी लाते हैं। यहां मोर बहुत होते हैं। गोपी-तालाब से तीन मील आगे नागेश्वर नाम का शिवजी और पार्वतीजी का छोटा-सा मन्दिर है। यात्री लोग इसके दर्शन भी जरूर करते हैं।

कहते हैं, भगवान कृष्ण इस बेट-द्वारका नाम के टापू पर अपने घरवालों के साथ सैर करने आया करते थे। यह कुल सात मील लम्बा है। यह पथरीला है। यहां की शोभा बड़ी निराली है। यहां कई अच्छे और बड़े मन्दिर हैं। कितने ही तालाब हैं। कितने ही भंडारे हैं। धर्मशालाएं हैं और सदावर्त लगते हैं। मन्दिरों के सिवा समुद्र के किनारे घूमना बड़ा अच्छा लगता है।

बेट-द्वारका ही वह जगह है, जहां भगवान कृष्ण

ने अपने प्यारे भगत नरसी की हुण्डी भरी थी। बेट-द्वारका के टापू का पूरब की तरफ का जो कोना है, उस पर हनुमानजी का बहुत बड़ा मन्दिर है। इसीलिए इस ऊंचे टीले को हनुमानजी का टीला कहते हैं।

आगे बढ़ने पर गोमती-द्वारका की तरह ही एक बहुत बड़ी चहारदीवारी यहां भी है। इस घेरे के भीतर पांच बड़े-बड़े महल हैं। ये दुमंजिले और तिमंजिले हैं। पहला और सबसे बड़ा महल श्रीकृष्ण का महल है। इसके दक्षिण में सत्यभामा और जाम्बवती के महल हैं। उत्तर में रुक्मिणी और राधा के महल हैं। इन पांचों महलों की सजावट ऐसी है कि आंखें चकाचौंध हो जाती हैं। द्वारका के मन्दिरों की सजावट यहां की सजावट के सामने फीकी है। इन मन्दिरों के किवाड़ों और चौखटों पर चांदी के पत्तरे चढ़े हैं। भगवान कृष्ण और उनकी चारों रानियों के सिंहासन पर भी चांदी मढ़ी है। मूर्तियों का सिंगार बड़ा ही कीमती है। हीरे, मोती और सोने के गहने उनको पहनाये गए हैं। सच्ची जरी के कपड़ों से उनको सजाया गया है।

रणछोड़जी के मन्दिर की ऊपर की मंजिलें देखने योग्य हैं। यहां भगवान की सेज है। झूलने के लिए झूला है। खेलने के लिए चौपड़ है। दीवारों में बड़े-बड़े शीशे

लगे हैं। इन सब झांकियों को देखकर मन खिल उठता है।

इन पांचों मन्दिरों के अपने अलग-अलग भण्डारे हैं। सजावट का सामान तैयार करने के लिए अलग-अलग कारखाने हैं। इन भण्डारों और कारखानों से तरह-तरह की मिठाइयां और दूसरे सामान मन्दिरों में जाते रहते हैं। रणछोड़जी के मन्दिर में दिन-रात तेरह बार भोग लगता है। दिन-रात में नौ बार भगवान की आरती होती है। मन्दिरों के दरवाजे सुबह ही खुलते हैं। बारह बजे बन्द हो जाते हैं। फिर चार बजे खुल जाते हैं और रात के नौ बजे तक खुले रहते हैं।

इन पांच विशेष मन्दिरों के सिवा और भी बहुत-से मन्दिर इस चहारदीवारी के अन्दर हैं। ये प्रद्युम्नजी टीकमजी, पुरुषोत्तमजी, देवकी माता, माधवजी अम्बाजी और गरुड़जी के मन्दिर हैं। इनके सिवा साक्षी-गोपाल, लक्ष्मीनारायण और गोवर्धननाथजी के मन्दिर और हैं। ये सब मन्दिर भी खूब सजे-सजाये हैं। इनमें भी चांदी-सोने का काम बहुत है।

बेट-द्वारका में कई तालाब हैं—रणछोड़-तालाब, रत्न-तालाब, कचौरी-तालाब और शंख-तालाब। इनमें रण-छोड़ तालाब सबसे बड़ा है। इसकी सीढ़ियां पत्थर

की हैं। जगह-जगह नहाने के लिए घाट बने हैं। इन तालाबों के आस-पास भी बहुत-से मन्दिर हैं। इनमें मुरली मनोहर, नीलकण्ठ महादेव, रामचन्द्रजी और शंख-नारायण के मन्दिर खास हैं। लोग इन तालाबों में नहाते हैं और मन्दिरों में फूल चढ़ाते हैं।

रणछोड़जी के मन्दिर से डेढ़ मील चलकर शंख-तालाब आता है। इस जगह भगवान कृष्ण ने शंख नामक राक्षस को मारा था। इसके किनारे पर शंख-नारायण का मन्दिर है। शंख-तालाब में नहाकर शंख-नारायण के दर्शन करने से बड़ा पुण्य होता है।

बेट-द्वारका से समुद्र के रास्ते जाकर विरावल बन्दरगाह पर उतरना पड़ता है। ढाई-तीन मील दक्षिण-पूरब की तरफ चलने पर एक कस्बा मिलता है। इसीका नाम सोमनाथ पट्टन है। यहां एक बड़ी धर्मशाला है और बहुत-से मन्दिर हैं। कस्बे से करीब पौन मील पर हिरण्य, सरस्वती और कपिला इन तीन नदियों का संगम है। इस संगम के पास ही भगवान कृष्ण के शरीर का अन्तिम संस्कार किया गया था।

कस्बे से करीब एक मील पश्चिम में चलने पर एक और तीर्थ आता है। यहां जरा नाम के भील ने कृष्ण भगवान के पैर में तीर मारा था। इसी तीर से

घायल होकर यह परम-धाम को गये थे। जब भगवान कृष्ण ने देखा कि सारे यादव आपस में लड़मरे, सारे कुल का नाश हो गया, बलराम जंगलों में चले गये, तब यह भी इस जगह आकर लेट गये और महासमाधि लगा ली। उनका बायां पैर बायें घुटने पर रखा था। जरा भील ने दूर से देखकर उस पैर को हिरनी का मुंह समझा और तीर चला दिया। इस जगह को बाण-तीर्थ कहते हैं। यहां बैशाख में बड़ा भारी मेला भरता है।

बाण-तीर्थ से डेढ़ मील उत्तर में एक और बस्ती है। इसका नाम भालपुर है। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि कृष्ण को जरा का तीर बाण तीर्थ में न लगकर यहां लगा था। यहां एक पद्मकुण्ड नाम का तालाब है। लोगों का कहना है कि इस तालाब में भगवान ने अपने पैर का खून धोया था। यात्री लोग इस कुण्ड में भी नहाते हैं।

हिरण्य नदी के दाहिने तट पर एक पतला-सा बड़ का पेड़ है। पहले इस स्थान पर बहुत बड़ा पेड़ था। बलरामजी ने इस पेड़ के नीचे ही समाधि लगाई थी। यहीं उन्होंने शरीर छोड़ा था।

सोमनाथ पट्टन बस्ती से थोड़ी दूर पर हिरण्य के किनारे एक स्थान है, जिसे यादवस्थान कहते

पर एक तरह की लम्बी घास मिलती है, जिसके चौड़े-चौड़े पत्ते होते हैं। यह वही घास है, जिसको तोड़-तोड़कर यादव आपस में लड़े थे और यही वह जगह है, जहां वे खत्म हुए थे।

इस सोमनाथ पट्टन कस्बे में ही सोमनाथ भगवान का प्रसिद्ध मन्दिर है। इस मन्दिर को महमूद गजनवी ने तोड़ा था। यह समुद्र के किनारे बना है।
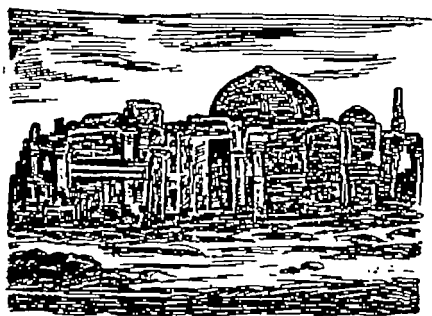
सोमनाथ-मन्दिर के खण्डहर

अब तो बिल्कुल टूटा-फूटा पड़ा है, पर अब भी इसकी शान निराली है। इसमें काला पत्थर लगा है। इतने

हीरे और रत्न इसमें कभी जड़े थे कि देखकर बड़े-बड़े राजाओं के खजाने भी शरमा जायं। शिवलिंग के अन्दर इतने जवाहरात थे कि महमूद गजनवी को ऊंटों पर लादकर उन्हें ले जाना पड़ा। महमूद गजनवी के जाने के बाद यह दुबारा न बन सका। लगभग सातसौ साल बाद इन्दौर की रानी अहिल्याबाई ने एक नया सोमनाथ का मन्दिर कस्बे के अन्दर बनवाया था। यह अब भी खड़ा है।

तीर्थराज प्रयाग

: १ :

प्रयाग की कहानी बहुत पुरानी है शायद पाठक इस बात को जानते होंगे कि कलकत्ता और बम्बई को बसे बहुत समय नहीं हुआ है। फिर भी ये हमारे देश के सबसे बड़े नगर हैं। क्यों? इसका कारण यह है कि आजकल लोगों को पैसा बहुत प्यारा है। जहां जल्दी धन कमाने की सुविधा दीखती है, वहां लोग फौरन जा बसते हैं।

यह तो आजकल की बात है, लेकिन पुराने जमाने में हमारे देश के लोगों को पैसा इतना प्यारा न था। पेट भर खाना मिल जाय और नंगे न रहें, यही काफी था। हमारे पुरखों को भगवान का ध्यान और भजन-पूजा आदि अधिक पसंद थे। वे ऐसे ही स्थानों में अधिक जा-जाकर बसते थे जहां इन बातों की सुविधा हो। गंगा नदी को आर्य पहले ही से पवित्र मानने लगे थे। और क्यों न मानते? गंगा ने उन्हें खेती के लिए बढ़िया जमीन और जल देकर मानों माता की तरह गोद में

बिठा लिया। गंगा उनके लिए एक मामूली नदी न रह कर 'गंगामैया' बन गई। तब से लेकर आजतक गंगा का यही नाम चला आता है।

जहां प्रयाग है, वहां गंगा और जमुना एक-दूसरे से मिलती हैं। पुराने समय में बहुत-से ज्ञानी-ध्यानी ऋषि लोग यहां आकर अपना-अपना आश्रम बनाकर रहने लगे। इस तरह धीरे-धीरे यह जगह ऋषि-मुनियों और साधू-महात्माओं का केन्द्र बन गई। इसका नाम दूर-दूर तक फैलने लगा और लोग इन महात्माओं का उप-देश सुनने को यहां आने लगे। इसलिए यह स्थान 'तीर्थ-राज' यानी 'तीर्थों का राजा' कहलाया जाने लगा। 'प्रयाग' का मतलब है 'प्र' यानी प्रकृष्ट यानी सबसे अच्छा या बहुत और 'याग' यानी यज्ञ। जहांपर बहुत से या सबसे अच्छे यज्ञ हुए हों, उसको प्रयाग कहते हैं।

रामायण में लिखा है कि बनवास को जाते समय राम अयोध्या से चलकर शृंगवेरपुर आये। वहां उन्होंने केवट से नाव मंगाकर गंगा को पार किया। शृंगवेर-पुर से चलकर वे प्रयाग पहुंचे। प्रयाग के पास आने पर उन्होंने अपने भाई लक्ष्मण से कहा, "हे लक्ष्मण, देखो, यही प्रयाग है, क्योंकि यहां मुनियों के यज्ञों का धुनं-

धित धुंआ उठ रहा है। अब हम गंगा और जमुना के संगम के पास आ गए, क्योंकि दोनों नदियों के जल के मिलने का कल-कल शब्द सुनाई पड़ रहा है।" तुलसी दास ने प्रयाग के बारे में लिखते हुए 'रामायण' में राम से कहलवाया है—

चार पदारथ भरा भंडारु।
पुन्य प्रदेश देस अति चारु॥

प्रयाग में राम ने भारद्वाज मुनि के आश्रम में
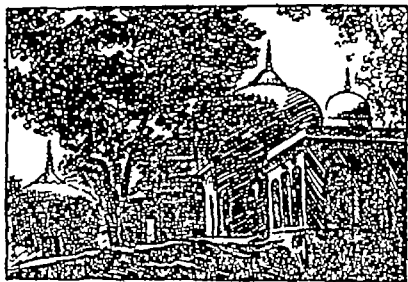
भारद्वाज-आश्रम

आराम किया था। आज भी प्रयाग में कर्नलगंज मुहल्ले में भारद्वाज के नाम से एक स्थान मौजूद है।

यहां कई मंदिर बने हुए हैं और उनमें बहुत-से ऋषि-मुनियों और देवी-देवताओं की मूर्तियां रक्खी हुई हैं।

महाकवि कालिदास ने 'रघुवंश' में प्रयाग का नाम तो नहीं लिया, पर गंगा और जमुना के मिलने का बड़ा प्यारा बखान किया है। राम सीताजी से कहते हैं, "देखो, यमुना की सांवली लहरों से मिली हुई उजली लहरोंवाली गंगाजी कैसी सुन्दर लग रही हैं।...जो गंगा-जमुना के संगम में नहाते हैं वे ज्ञानी न हों तो भी संसार से पार हो जाते हैं।"

रामायण के बाद प्रयाग के बारे में इतिहास में कोई खास बात नहीं आती। आगे चलकर इस देश में बुद्ध का जन्म हुआ, पर वह भरी जवानी में अपने पिता का राज-पाट छोड़कर जंगल में चले गये। बाद में घूम-घूम कर देश में अपने धर्म का प्रचार करते हुए प्रयाग गये। वहां कुछ दिन ठहरकर लोगों को उपदेश दिया।

प्रयाग से कुछ मील दूर पर एक जगह है कोसम। वहां एक बहुत पुराने नगर कौशाम्बी के खंडहर खोदकर निकाले गए हैं। किसी जमाने में यह नगर बहुत प्रसिद्ध था। वहां के राजा उदयन और उनकी रानी वासवदत्ता की कहानी बड़ी मनोरंजक है। कहा जाता है

कि यहां गौतमबुद्ध दो बरस तक रहे थे। बौद्धधर्म का यहां एक बड़ा विहार था। चंदन की बनी बुद्ध की एक विशाल मूर्ति भी यहां थी, जिसे राजा उदयन ने बनवाया था। एक कुंए और स्नानघर का भी पता चला है। बुद्ध भगवान यहां स्नान किया करते थे। महाराज हर्ष के समय में आनेवाले चीनी यात्री ह्वेनसांग के समय तक इस कुंए में जल भरा रहता था। यहां के एक स्तूप में महात्मा बुद्ध के केश और नाखून गड़े हुए थे।

सम्राट अशोक राजा होने से पहले कौशाम्बी में रहा था। सम्राट होने पर उसने यहां एक लाट बनवाई। इस लाट पर उसने अपनी प्रजा के लिए अच्छी-अच्छी बातें खुदवाईं। आजकल इलाहाबाद के किले में अशोक की जो लाट है वह कौशाम्बी से ही आई थी।

: २ :

प्रयाग में हर साल माघ के महीने में संगम पर मेला लगता है। बारवें साल कुंभ के अवसर पर तो तीस-पैंतीस लाख तक यात्री इकट्ठे हो जाते हैं। हर छठे साल अर्ध-कुंभी का मेला लगता है। इस मौके पर भी काफी भीड़ इकट्ठी हो जाती है।

प्रयाग के ये मेले बड़े पुराने हैं।

कुंभ के बारे में एक कथा है। कहते हैं, जब देवताओं और राक्षसों में अमृत के लिए झगड़ा हुआ और समुद्र मथा गया तो अमृत का घड़ा लिये धनवन्तरि समुद्र से निकले। उन्होंने यह घड़ा देवताओं को दे दिया। देवता उसे किसी साफ़ जगह में रखकर पान करना चाह रहे थे कि इसी बीच दैत्य उसको उठा ले जाने को तैयार हुए। देव चाहते थे कि अमृत पीकर वे अमर हो जायं। दैत्य चाहते थे कि वे पीयें। दैत्य ज्यादा ताकतवाले थे। उधर भगवान ने सोचा कि अगर दैत्यों ने अमृत पी लिया तो बड़ा बुरा होगा। सो वह मोहनी का रूप धरकर वहां पहुंचे और देवों तथा दैत्यों को अपने रूप से चकितकर उनका लड़ना-झगड़ना बंद कर दिया। यही नहीं, उन्होंने दोनों के बीच समझौता कराने की भी जिम्मेदारी ले ली। मोहनी के रूप के वश में होकर दैत्यों ने उनकी शर्त मान ली।

मोहनी ने अमृत का घड़ा इन्द्र के बेटे जयंत को सौंपा और उसकी रखवाली का काम सूर्य, चंद्र, बृहस्पति और शनि के हाथ में दिया। चंद्रमा की जिम्मेदारी थी कि अमृत गिरने न पाये; बृहस्पति को देखना

था कि कहीं राक्षस उसे न उड़ा लें; अकेले देवता उसे न हड़प लें, यह जिम्मेदारी रही शनि की। रहे सूर्य, उनका काम यह देखना था कि घड़ा फूटने न पावे।

इसी समय देवताओं के इशारे से जयंत अमृत का घड़ा लेकर भागा। राक्षसों ने उसका पीछा किया। भागते समय जयंत को चार जगह घड़ा रखना पड़ा। उसे रखते तथा उठाते समय इन चारों जगहों पर अमृत की बूंदें गिरीं। इसीसे वहां कुंभ-पर्व मनाया गया और आज भी मनाया जाता है। ये चार जगहें हैं—प्रयाग, हरिद्वार, नासिक और उज्जैन।

कुंभ के मेले में देश के कोने-कोने से आदमी आते हैं। साधु-संन्यासियों का भी बड़ा जमघट रहता है। उनके अखाड़े बड़ी धूम-धाम और गाजे-बाजे के साथ निकलते हैं।

एक पुरानी कहावत है—"तीर्थ गए मुड़ाए सिद्ध।" प्रयाग में जितने यात्री आते हैं, उनमें से बहुत-से अपने सिर के बाल मुड़ा लेते हैं। सधवा स्त्रियां अपना पूरा मुंडन नहीं करातीं। वे अपने थोड़े से बाल कैंची से कटवाकर त्रिवेणी में बहा देती हैं।

त्रिवेणी पर लोग तरह-तरह के दान करते हैं। इनमें से एक दान है वेणीदान। इस दान को देनेवाले

लोग अपनी स्त्री को दान कर देते हैं। बाद में कुछ धन देकर उसे ले लेते हैं। दक्षिण भारत से आये हुए यात्री इस तरह का दान बहुत करते हैं।

: ३ :

आज से कोई साढ़े बारह सौ साल पहले हर्षवर्धन नाम का एक बड़ा राजा राज्य करता था। उसकी राजधानी कन्नौज में थी। उसके समय में चीन से ह्वेनसांग नामक यात्री भारत में आया था। इस यात्री को हर्ष ने बड़े आदर के साथ अपनी राजधानी में बुलाया था।

हर्ष हर पांच साल प्रयाग में त्रिवेणी के संगम पर 'महामोक्ष परिषद्' के नाम से एक सभा किया करता था। जब ह्वेनसांग भारत में था तो इस तरह की छठवीं सभा हुई। इस सभा में ह्वेनसांग भी शामिल हुआ था।

ह्वेनसांग ने इस सभा का हाल विस्तार से लिखा है। उससे पता चलता है कि इस सभा में शामिल होने के लिए भारत के अनेक राजा इकट्ठे हुए थे। महाराज हर्ष ने त्रिवेणी पर अपने खजाने का सारा धन पुजारियों, विधवाओं, अनाथों और दीन-दुखियों को दान कर दिया। जब कुछ न रह गया तो उसने अपना रत्नों

से जड़ा हुआ राजमुकुट और मोतियों का हार भी उतारकर दे दिया, यहांतक कि पहनने के कीमती कपड़े भी दान कर डाले। ऐसा महादान महाराज हर्ष बड़ी खुशी से हर पांचवें साल प्रयाग में किया करते थे।

: ४ :

प्रयाग को अब इलाहाबाद कहते हैं। इसका यह नाम अकबर बादशाह के जमाने में पड़ा। उसने पहले इसका नाम अल्लाहाबाद रक्खा था, जो बाद में धीरे-धीरे इलाहाबाद हो गया।

अकबर बादशाह अपने एक विद्रोही सरदार को दबाने के लिए प्रयाग के पास एक जगह आया। लौटते समय वह प्रयाग भी पहुंचा। गंगा और जमुना के बीच की जगह को देखकर उसका मन हुआ कि यहां अपने रहने के लिए एक किला बनवाए। यही उसने किया। यह किला गंगा-जमुना के बीच की भूमि पर लाल पत्थर का बना हुआ है। एक दीवार जमुना के किनारे है और दूसरी गंगा के सामने। इस तरह किले की रक्षा करने का काम दोनों नदियां करती हैं। किले के चार हिस्से थे। पहला, बादशाह के रहने के लिए था, जिसमें १२ बगीचे थे। दूसरा बेगमों और शाहजादों के लिए था।

तीसरा शाही घराने के दूसरे लोगों के लिए और चौथा, सिपाही, नौकर-चाकर आदि के लिए।

प्रयाग का किला

किले के बनवाने में ६ करोड़ से कुछ ज्यादा रुपया लगा और ४५ बरस। इसमें २३ महल, २५ दरवाजे, २३ बुर्ज, २७७ मकान और अनेक कोठरियां, तहखाने तथा तबेले आदि थे। इनके अलावा पांच कुएं, एक बावड़ी और एक नहर थी। महलों के नाम बड़े सुन्दर रखे गए थे, कुछ हिन्दू, कुछ मुसलमानी—जैसे, उमनाबाद, अमरावती, आनंदमहल, महासिंगार महल, अलोल महल, कलोल महल, दिलशाह महल, हंस महल, सुखनाम महल आदि।

इस किले में एक ऊंची जगह पर बादशाह का झरोखा था, जहां से वह हाथियों और जंगली जानवरों की लड़ाइयां देखा करता था। जमुना की ओर के महलों में कई बड़े-बड़े दीवानखाने थे, जिनमें बैठकर बादशाह अपनी बेगमों के साथ गंगा और जमुना के नजारे देखा करता था।

यह किला अपने ढंग का बेजोड़ था। बाद में अंग्रेजी राज्य के दिनों में इसमें कुछ हेर-फेर हो गया। अंग्रेजी राज्य के जमाने में किले में लड़ाई का सामान रक्खा जाने लगा। आज भी वहां जाने के लिए पहले से पूछना पड़ता है।

इलाहाबाद की दूसरी नामी जगह खुसरो-बाग है। यह बाग चौकोर है। उसके चारों तरफ ऊंची-ऊंची पत्थर की दीवारें हैं। उत्तर और दक्षिण की ओर को दो बड़े फाटक हैं।

बाग के बीच में थोड़े-थोड़े फासले पर चार बड़ी इमारतें हैं। पूरब की तरफ के भवन में शाहजादा खुसरो की कब्र है। खुसरो जहांगीर का बेटा था। बुरहानपुर में उसका कत्ल करा दिया गया था। बात यों हुई कि खुसरो अपने पिता जहांगीर से बागी होकर आगरे से लाहौर चला गया था। वहां जाकर उसने

अपने पिता से लड़ाई ठान दी। पर जहांगीर की सेना के मुकाबले उसकी हार हुई और वह पकड़ा गया। बागी होने के कसूर में उसकी आंखों की पलकों को सिलवा दिया गया। बाद में जहांगीर को इस बात का बड़ा पछतावा हुआ।

खुसरो बाग

खुसरो अपने दूसरे भाई खुर्रम की निगरानी में बुरहानपुर के किले में कैद था। यही खुर्रम शाहजहां के नाम से जहांगीर के बाद बादशाह हुआ। जब खुर्रम ने देखा कि जहांगीर को खुसरो पर दया आने लगी तो उसको डर होने लगा कि कहीं जहांगीर अपने मरने के बाद खुसरो को ही बादशाह न बना डाले।

इसलिए उसने खुसरो की हत्या करवा दी और जहांगीर के पास खबर भिजवा दी कि पेट के दर्द से वह मर गया। खुसरो की लाश पहले बुरहानपुर में गाड़ी गई। फिर जहांगीर के हुक्म से उखाड़कर आगरे लाई गई। वहां लोग उसकी कब्र को पूजने लगे। यह बात नूरजहां को सहन न हुई। सौतेली मां होने के कारण वह खुसरो को फूटी आंख भी नहीं देख सकती थी। सो उसने जहांगीर से कह-सुनकर खुसरो की लाश को आगरे से फिर खुदवाकर इलाहाबाद भिजवा दिया। यहां वह इसी बाग में दफन किया गया।

खुसरो की कब्र एक महराबदार छत के नीचे है। देखने में सुंदर मालूम देती है। उसके ऊपर पहले मखमल का एक कपड़ा टंगा रहता था। सिरहाने खुसरो की पगड़ी रक्खी थी और वह क़ुरान, जिसे अपनी हत्या से पहले वह पढ़ रहा था। जिस भवन में खुसरो की कब्र है, उसके अन्दर फारसी में बारह शेर लिखे हुए हैं।

खुसरो-बाग में दो और कब्रें हैं। एक उसकी मां की और दूसरी उसकी बहन की। अफीम खाने के कारण खुसरो की मां शाह बेगम की मौत हुई थी। बहन सुल्तानुन्निसा ने अपनी जिन्दगी में ही अपनी कब्र

बनवाई थी। बाद में उसकी राय बदल गई। वह कब्र खाली पड़ी है। सुल्तानुन्निसा मरने के बाद सिकंदरे में अकबर की कब्र के पास दफ़नाई गई।

खुसरो-बाग के पास ही खुल्दाबाद की सराय है। इसे जहांगीर बादशाह ने बनवाया था। प्रयाग के दारागंज मुहल्ले का शाहजहां के सबसे बड़े बेटे दाराशिकोह ने बसाया था। उसीके नाम पर मुहल्ले का नाम दारागंज पड़ा।

अंग्रेजी राज्य के शुरू के दिनों में दिल्ली के मुगल बादशाह शाहआलम और अंग्रेजों के बीच प्रयाग में एक बड़ी महत्त्वपूर्ण संधि हुई थी। अंग्रेजों की ओर से क्लाइव इस संधि की शर्तों को तय करने आया था। इस संधि के अनुसार अंग्रेजों को शाहआलम ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा के प्रांतों की मालगुजारी वसूल करने का हक दे दिया। इस तरह अंग्रेजी राज्य की नींव एक तरह प्रयाग में पड़ी।

: ५ :

हमारे देश को प्रयाग ने अगर और कुछ भी न दिया होता तो भी देश को उसका अहसानमंद होना पड़ता। पंडित जवाहरलाल और उनके पिता पंडित

मोतीलाल नेहरू देश को प्रयाग से ही मिले। कर्नलगंज में नेहरू-परिवार का अपना मकान है। इसे 'आनंद-भवन' कहते हैं। आनंद-भवन को पंडित मोतीलाल ने बनवाया था। आजकल वह खाली रहता है, क्योंकि

आनंद-भवन

नेहरूजी दिल्ली में रहते हैं। आनंद-भवन के पास ही उनका बनवाया एक और विशाल भवन है, जो उन्होंने बाद में कांग्रेस को दान कर दिया। तब से उसका नाम 'स्वराज्य-भवन' पड़ा। इसमें बहुत दिनों तक कांग्रेस का दफ्तर रहा था। अब आधे भाग में शरणार्थी बच्चों का स्कूल है और आधे में अस्पताल।

पत्थर और धातु की अनेक मूर्तियां हैं । कौशाम्बी से मिली बहुत-सी वस्तुएं भी यहीं रक्खी हैं, जिनमें तरह-तरह के खिलौनों की तरफ़ आंखें खासतौर पर जाती हैं। पुराने जमाने के सिक्के भी हैं। हाथ की लिखी हुई पुस्तकों और चित्रों का भी अच्छा संग्रह है ।

आजयबघर के एक कमरे का नाम है जवाहरलाल नेहरू भवन । इसमें पंडित जवाहरलाल नेहरू की दी हुई चीजें हैं । इनमें मानपत्र अधिक हैं, जो नेहरूजी को बहुत-सी जगहों से मिले थे । कुछ दूसरे देशों के भी हैं। ये मानपत्र चांदी या सोने के कीमती पात्रों में रख कर दिये गए थे। इन सबको उन्होंने ज्यों-का-त्यों अजायबघर को दान कर दिया । मानपत्रों के अलावा कुछ और भी चीजें हैं, जैसे चरखे और खादी व रेशम आदि के कपड़े ।

पंडित जवाहरलाल नेहरू की दी हुई चीजों में एक चीज बड़ी अनमोल है । वह है उनके जीवन-चरित की उनके अपने हाथ की लिखी कापी । इसे उन्होंने जेल में लिखा था और यह लंदन से छपी थी।

एक अच्छे ढंग की बनी हुई इमारत में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का कार्यालय है । इस संस्था ने हिन्दी को बढ़ावा देने के लिए बहुत काम किया है। हर साल

देश के किसी-न-किसी नगर में साहित्य सम्मेलन का जलसा होता है, जिसमें हिन्दी भाषा और साहित्य के बहुत से विद्वान शामिल होते हैं । यहां से हिन्दी में अच्छी-अच्छी किताबें निकलती हैं। पास ही इसका संग्रहालय है।

ऐसी ही एक दूसरी संस्था है हिन्दुस्तानी एकॉडमी। इसने भी हिन्दी में ऊंचे दरजे की पुस्तकें निकालकर हिन्दी की अच्छी सेवा की है।

: ६ :

पर जिस कारण से प्रयाग इतना प्रसिद्ध है वह है त्रिवेणी का संगम। अगर संगम न होता तो इस जगह का तीन-चौथाई महत्त्व कम हो जाता ।

गंगा, जमुना और सरस्वती, ये तीन नदियां इस जगह पर मिलती हैं। इनमें से दो तो अब भी हैं। तीसरी के बारे में लोगों के अलग-अलग अंदाज़ हैं। हो सकता है, सरस्वती नाम की कोई तीसरी धारा भी कभी बहती हो, लेकिन अब वह दिखाई नहीं देती।

कहा जाता है कि यहां पहले जमुना ही बहती थी। गंगा तो बाद में आई। गंगा के आने पर जमुना अर्घ्य लेकर आगे आई, लेकिन गंगा ने उसे स्वीकार न

किया। जमुना ने पूछा,"क्यों बहन, स्वीकार क्यों नहीं करतीं ?" गंगा ने उत्तर दिया, "इसलिए कि तुम मुझसे बड़ी हो। मैं तुम्हारा अर्घ्य ले लूंगी तो आगे मेरा नाम ही मिट जायगा। मैं तुममें समा जाऊंगी।

यह सुनकर जमुना बोली, "बहन, तुम इसकी चिंता न करो। तुम मेरे घर मेहमान बनकर आई हो। मेरा यह अर्घ्य स्वीकार कर लो। मैं ही तुममें लीन हो जाऊंगी। चार सौ कोस तक तुम्हारा ही नाम चलेगा। फिर मैं तुमसे अलग हो जाऊंगी।"

गंगा ने यह बात मान ली। इस तरह गंगा और जमुना एक-दूसरे से गले मिलीं।

गंगा और जमना के बारे में और भी कई कथाएं कही जाती हैं।

संगम पर लोग नाव में बैठकर गंगा-जमुना की धाराओं के मिलन को देखते हैं। गंगा का जल सफेद, जमुना का नीला। दोनों रंग अलग-अलग दिखाई देते हैं। संगम से आगे गंगा का जल भी कुछ नीला हो जाता है। कहते हैं, संगम से आगे नाम गंगा का रह जाता है और रंग जमुना का। हिमालय की पुत्री होने के कारण गंगा का जल शीतल है, सूर्य की कन्या माने जाने के कारण जमुना का गरम। जाड़ों में स्नान करने पर

इस बात की सचाई साफ मालूम हो जाती है।

संगम पर रोज यात्रियों की भीड़ रहती है। एक छोटा-मोटा मेला तो यहां बारहों महीने लगा रहता है। पंडों की झोंपड़ियां बनी हैं, जिनपर अलग-अलग झंडे फहराते हैं। संगम पर बहुत-से लोग अपने मरे हुए संबंधियों की राख और अस्थियां बहाने आते

संगम पर पंडों की झोंपड़ियां

हैं। महात्मा गांधी की अस्थियां भी इसी स्थान पर प्रवाहित की गई थीं। इस प्रकार आदिकाल से लेकर अबतक गंगा हमारे देश की न मालूम कितनी विभूतियों की राख और अस्थियों को बहाकर ले गई है और उन्हें सागर को अर्पण कर दिया है।

किया। जमुना ने पूछा,"क्यों बहन, स्वीकार क्यों नहीं करतीं?" गंगा ने उत्तर दिया, "इसलिए कि तुम मुझसे बड़ी हो। मैं तुम्हारा अर्घ्य ले लूंगी तो आगे मेरा नाम ही मिट जायगा। मैं तुममें समा जाऊंगी।

यह सुनकर जमुना बोली, "बहन, तुम इसकी चिंता न करो। तुम मेरे घर महमान बनकर आई हो। मेरा यह अर्घ्य स्वीकार कर लो। मैं ही तुममें लीन हो जाऊंगी। चार सौ कोस तक तुम्हारा ही नाम चलेगा। फिर मैं तुमसे अलग हो जाऊंगी।"

गंगा ने यह बात मान ली। इस तरह गंगा और जमुना एक-दूसरे से गले मिलीं।

गंगा और जमना के बारे में और भी कई कथाएं कही जाती हैं।

संगम पर लोग नाव में बैठकर गंगा-जमुना की धाराओं के मिलन को देखते हैं। गंगा का जल सफेद, जमुना का नीला। दोनों रंग अलग-अलग दिखाई देते हैं। संगम से आगे गंगा का जल भी कुछ नीला हो जाता है। कहते हैं, संगम से आगे नाम गंगा का रह जाता है और रंग जमुना का। हिमालय की पुत्री होने के कारण गंगा का जल शीतल है, सूर्य की कन्या माने जाने के कारण जमुना का गरम। जाड़ों में स्नान करने पर

इस बात की सचाई साफ मालूम हो जाती है।

संगम पर रोज यात्रियों की भीड़ रहती है। एक छोटा-मोटा मेला तो यहां बारहों महीने लगा रहता है। पंडों की झोंपड़ियां बनी हैं, जिनपर अलग-अलग झंडे फहराते हैं। संगम पर बहुत-से लोग अपने मरे हुए संबंधियों की राख और अस्थियां बहाने आते

संगम पर पंडों की झोंपड़ियां

हैं। महात्मा गांधी की अस्थियां भी इसी स्थान पर प्रवाहित की गई थीं। इस प्रकार आदिकाल से लेकर अबतक गंगा हमारे देश की न मालूम कितनी विभूतियों की राख और अस्थियों को बहाकर ले गई है और उन्हें सागर को अर्पण कर दिया है।

: ७ :

तीर्थराज होने के कारण प्रयाग में मंदिर भी बहुत-से हैं। पातालपुरी या अक्षयवट का मंदिर इनमें बहुत प्रसिद्ध है। यह मंदिर त्रिवेणी के पास ही बना है। किले के एक फाटक से होकर इसमें जाने का रास्ता है। इस मंदिर की छत खंभों पर टिकी है। मंदिर में घूमते समय ऐसा जान पड़ता है, मानो किसी तहखाने या सुरंग में घूम रहे हों। शायद इसीलिए इसे लोग 'पातालपुरी का मंदिर' कहते हैं।

यहां अनेक हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियां हैं। धर्मराज, अन्नपूर्णा, विष्णु, लक्ष्मी, कुबेर, शंकर, सरस्वती आदि सब मिलाकर ४३ मूर्तियां हैं। कुछ ऋषि-मुनियों की हैं, जिनमें दुर्वासा, मार्कंडेय और वेदव्यास हैं। इनमें से कुछ मूर्तियां तो बड़ी ही सुंदर हैं।

इन मंदिरों की सबसे मुख्य चीज अक्षयवट है। उत्तर की दीवार में एक बड़ा आला बना है। उसमें पुरानी लकड़ी का एक मोटा गोल टुकड़ा रक्खा हुआ है, जिसपर कुछ कपड़ा लिपटा रहता है। यही अक्षय-वट बताया जाता है। यात्री-लोग इसका पूजन करते

हैं और इसपर सूत लपेटते हैं। हिन्दुओं का विश्वास है कि अक्षयवट प्रलय में भी नष्ट नहीं होता। प्रलय के समय इसी अक्षयवट पर भगवान छोटे बच्चे का रूप धरकर अपने पैर के अंगूठे को मुंह में देकर क्रीड़ा करते हैं।

ह्वेनसांग नामक चीनी यात्री ने इस अक्षयवट के बारे में लिखा है। उससे पता चलता है कि उस समय यह वृक्ष मंदिर के आंगन में खड़ा था। उसकी पत्तियां और शाखाएं दूर-दूर तक फैली हुई थीं। उन दिनों लोगों का विश्वास था कि जो भी आदमी इस पेड़ से गिरकर जान देगा, वह सदा के लिए स्वर्ग चला जायगा।

गंगा के उस पार झूसी है, जो पुराने जमाने में प्रतिष्ठानपुर के रूप में अपनी निराली शान रखती थी। आज भले ही उसकी यह प्रतिष्ठा न हो, लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि एक समय उसकी यश-पताका सारे देश में फैली थी।

चन्द्रवंश के प्रतापी नरेश पुरुरवा और नहुष, ययाति और पुरु, दुष्यंत और भरत सभी ने इसी प्रतिष्ठानपुर को अपनी राजधानी बनाया था और यहीं से अपना राज-काज चलाया था।

झूंसी

प्रयाग से चौबीस मील पर हंडिया नामक स्टेशन से तीन मील दक्खिन की ओर एक और पुरानी जगह है। यहां गंगा के किनारे कोई तीस बीघे का एक बड़ा टीला है, जिसे लाक्षागिरि कहते हैं। इस समय लाक्षागिरि एक मामूली-सा गांव है। सोमवती अमावस्या के दिन वहां गंगा-स्नान का बड़ा मेला लगता है। इस स्थान का हाल महाभारत में आया है। पांडवों का नाश करने के लिए दुर्योधन ने अपने मंत्री पुरोचन के द्वारा एक जाल फैलाया। उसने सारे हस्तिनापुर में घोषणा करा दी कि 'वारणावत' नगर में एक बड़ा मेला होने

वाला है। इस मेले में जाने के लिए उसने पांडवों और उनकी माता कुन्ती को भी किसी तरह तैयार करा लिया। अब दुर्योधन ने अपने मंत्री पुरोचन को समझाकर कहा कि पांडवों के वहां पहुंचने के पहले ही तुम वहां पहुंच जाओ और लाख का घर बनवाओ। पांडवों को होशियारी से उसी घर में ठहराना और मौका मिलने पर जब वे सोते हों तो उसमें आग लगवा देना, जिससे वे जलकर भस्म हो जायं। विदुर को उसका पता चल गया। उन्होंने पांडवों को उसका भेद बता दिया। वे वारणावत नगर में पहुचे। वहां उनका बड़ी धूम-धाम से स्वागत किया गया। पुरोचन ने भी उनकी बहुत आवभगत की और उनको पहले एक अलग जगह पर ठहराया, बाद में उसी लाख के मकान में ले गया।

इसी बीच विदुर का भेजा कारीगर युधिष्ठिर के पास आया और उसने उस घर के भीतर से बाहर जाने के लिए चुपचाप एक सुरंग तैयार कर दी। एक दिन कुन्ती ने सहभोज किया, जिसमें पुरोचन और आस-पास के बहुत से लोग शामिल हुए। भोज के बाद सब लोग अपने-अपने घर चले गये, लेकिन एक बुढ़िया अपने पांच बच्चों के साथ वहीं सो गई। भीम ने मौका देखकर जिस हिस्से में पुरोचन सो रहा था,

उसमें आग लगा दी। बात-की-बात में आग चारों तरफ फैल गई। पांडव अपनी माता के साथ सुरंग में होकर सही-सलामत बाहर निकल गये। वहां से कुछ दूर पर गंगा के किनारे विदुर की भेजी एक नाव खड़ी थी। उसीसे पार होकर ये लोग दक्षिण की तरफ चले गये। कुछ लोगों का कहना है कि वारणावत यही जगह थी, जो इस घटना के कारण बाद में लाक्षागृह के नाम से प्रसिद्ध हुई।

इस तरह प्रयाग का पुराने समय से लेकर अबतक बड़ा महत्त्व है।

●

हरिद्वार

उस दिन न तेज गरमी थी और न कड़ा जाड़ा। मौसम बड़ा सुहावना था। चौपाल के आगे बरगद का पेड़ था। उसकी डालियों को छूती हुई ठंडी हवा चल रही थी, सबको बड़ी प्यारी लग रही थी।

चौपाल में गांव के कुछ बड़े-बूढ़े, जवान और बच्चे जमा थे। कुछ लोग आनेवाले थे। जो आ गये थे वे हरिमोहन की बाट देख रहे थे। हरिमोहन ने ही उन सब को चौपाल में जमा होने का न्यौता दिया था।

भूरे चौधरी ने हुक्के में दम मारते हुए कहा, "ज्वालानाथ, तुम बड़े अच्छे रहे। दोनों मानस एक साथ हरिद्वार स्नान कर आये।"

अतरू चौधरी ने खिलखिलाकर कहा, "अरे, चौधरी यह कब जानेवाला था। इसे तो इसकी वह खींचकर ले गई। यह तो उसके ही सहारे हरिद्वार नहा आया, वरना यह कब घर से निकलता है!"

भूरे चौधरी कहने लगे, "भैया, अच्छा हुआ, इसके घर से निकलने पर हम सबको दावत तो मिल गई।"

ये सब बातें हो ही रही थीं कि इतने में हरिमोहन भी वहां आ पहुंचा। सबने उसे प्यार के साथ अपने पास बैठ जाने को कहा। वह चबूतरे के एक सिरे की तरफ मूढ़े पर बैठ गया। और लोग खाटों पर बैठे थे। बाद में आनेवालों में कुछ नीचे भी बैठते जाते थे।

सब लोग बड़े ध्यान से यात्रा का हाल सुन रहे हैं।

भूरे चौधरी ने हरिमोहन से कहा, "अच्छा, लल्ला, पहले तुम गंगा-स्नान की बात सुनाओ। तुमने अपने बाबा ज्वालानाथ को कैसे-कैसे स्नान कराया?"

हरिमोहन ने कहा, "गंगा-दशहरे के दिन हमारी गाड़ी सुबह पांच बजे हरिद्वार स्टेशन पहुंच गई।

हमारे पास कोई खास सामान तो था नहीं। मामूली ओढ़ने-बिछाने और खाने-पीने की चीजें थीं। इसलिए हम सब स्टेशन से पैदल ही गंगा-घाट की ओर चल दिये। रास्ते में बार-बार पंडे पूछते थे—कौन जिले से आये हो, महाराज ? हमने उनकी किसी बात का कोई उत्तर न दिया। कुछ ही देर में हम हरिद्वार के उस घाट पर पहुंच गये, जिसे 'हर की पौड़ी' कहते हैं। यहां हमने अपना सब सामान एक घाटवाले के पास रख दिया। फिर गंगाजी में नहाने चले।"

अतरू चौधरी ने हुक्के में दम लगाते हुए पूछा, "भैया, तुमने तो अपने दादा को खूब मलमलकर नहलाया होगा !"

भूरे चौधरी ने मजाक करते हुए कहा, "अरे, इसने तो अपनी ताई की भी खूब खातिर की होगी !"

दो-तीन बुजुर्गों ने हरिमोहन की भलमनसाहत की तारीफ करते हुए कहा, "लड़का भला है। यह तो दोनों को ही अच्छी तरह से स्नान कराके लाया है।"

भूरे चौधरी ने पूछा, "अच्छा भैया ! फिर क्या हुआ ? स्नान करके तुम कहां-कहां गये ?"

हरिमोहन ने अपनी कथा को आगे बढ़ाया—

"हर की पौड़ी के पास ही स्नान करके हमने

कपड़े बदले। फिर घाटवाले ने चंदन लगाया। दादी ने गंगा में फूल चढ़ाये। इसके बाद हम सबने एक

हरि की पौड़ी
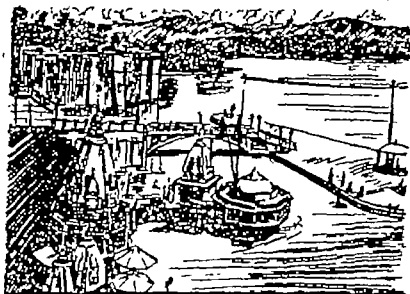
दूसरे घाट पर बैठकर भोजन किया। यहां से हम सब एक धर्मशाला में आये।

भूरे चौधरी ने पूछा, "धर्मशाला में तो कहते हैं कि ठहरने को जगह ही नहीं मिलती ?"

हरिमोहन ने कहा, "नहीं, ऐसी बात नहीं है। हरिद्वार में पचासों धर्मशालाएं हैं। उनमें हजारों यात्री ठहरते हैं। जो यात्री पहले आजाते हैं, उनको कुछ अच्छी जगह मिल जाती है और जो देर से आते हैं,

उन्हें कुछ कठिनाई उठानी पड़ती है।"

भूरे चौधरी ने कहा, "अच्छा भाई, अब तुम हमको हरिद्वार नगरी की कथा सुनाओ।"

लक्खू बाबा ने कहा, "अरे भूरे, पहले गंगामाई की कथा तो सुन ले। गंगामाई के कारन तो दुनिया हरिद्वार में स्नान के लिए आये है, नहीं तो यहां धरो ही का है?"

भूरे ने लक्खू बाबा की बात मानते हुए हरिमोहन से कहा, "अच्छा भाई, तुमको कुछ मालूम है कि गंगा की महिमा क्यों है?"

"हां बाबा, मालूम है"—इतना कहकर हरिमोहन ने गंगा की महिमा का बखान करना शुरू कर दिया, कहने लगा—

"भगवान् राम के वंशज राजा भगीरथ गंगाजी की पवित्र धारा को इस भूमि पर लाये थे। भगवान राम के वंशजों की कई पीढ़ियां गंगा को लाने में खत्म हो गई, परंतु अंत में भगीरथ सफल हो गये। गंगाजी राम के समय में भी पूजनीय थीं। स्वयं भगवान राम ने वनवास के समय प्रयागराज में सीता और लक्ष्मण के साथ गंगा-स्नान किया था। गंगा हिमालय पहाड़ से निकलती है। इसके निकलने का

असली स्थान गोमुख है, पर सब लोग मानते हैं कि यह गंगोत्री से निकलकर पहाड़ों के बीच बहती हुई हरिद्वार में आती है।"

नूरे ने पूछा, "हमने सुना था कि गंगा शिवजी की जटाओं से निकली है!"

हरिमोहन ने उत्तर दिया, "कुछ लोग गंगाजी को शिवजी की जटाओं से निकला मानते हैं, परंतु मीठे पानी की यह धारा गंगोत्री की ओर से आती है। अपने-अपने विचारों के अनुसार लोग गंगा की महिमा का तरह-तरह से बखान करते हैं। किसी ने गंगा को पापनाशिनी माना है और किसी ने पुत्रों का मंगल करनेवाली। हमारे देश के अनेक महात्मा इसके तट पर अपना जीवन बिताते रहे। भगवान दत्तात्रेय ने भी हरिद्वार के कुशावर्त घाट के पास तप किया था। भर्तृहरि भी इस पवित्र स्थान में आये और बहुत समय तक गंगा का जल पीकर अपनी आत्मा को शुद्ध और पवित्र करते रहे।"

लक्खू ने कहा, "छोड़ो इसे, अब तुम हरिद्वार की महिमा सुनाओ।"

हरिमोहन ने कहा, "हरिद्वार का पुराना नाम मायापुरी है। मायापुरी के पांच मील के क्षेत्र को

पहले माया-क्षेत्र कहते थे। इस तीर्थ का नाम हजारों सालों से चला आता है। अपने देश के बड़े-बड़े राजा-महाराजा वहां गये। चीन देश का मशहूर यात्री ह्वेनसांग भी यहां आया। मुगल बादशाहों के जमाने में इस नगरी का नाम बड़ा ऊंचा रहा। साधु-संतों ने भी यहां तपस्या की। इन साधु-संतों के दर्शन के लिए दूर-दूर से लोग आया करते थे और गंगाजी के किनारे पर उनके उपदेश सुना करते थे।"

किसीने पूछा, "क्या यह नगरी हमेशा से ऐसी ही थी ?"

हरिमोहन ने कहा, "नहीं, किसी समय में यह गंगा के किनारे-किनारे एक सीधी पट्टी में बसी थी। धीरे-धीरे आदमियों की संख्या बढ़ती गई। उन्होंने यहां के पहाड़ों को कटवाकर बहुत-सी जगह निकलवाई। इस तरह इस नगरी का फैलाव हुआ। जब गंगा से नहर गंग निकाली गई, तब तो इसका और भी विस्तार हो गया। यहां का मौसम बड़ा सुहावना रहता है। इसलिए लोग बराबर आते-जाते रहते हैं। और अब तो राज्य-सरकार हरिद्वार को और भी बढ़ा देना चाहती है। कुछ समय पहले उसने हर की पौड़ी से कुछ दूर आगे बाजार की तरफ़ गंगा पर एक सुंदर पुल बनाया है।

गंगा के किनारे बसी हरिद्वार नगरी

दूसरी तरफ़ महकमा नहर की जमीन पर सुंदर-सुंदर पार्क बनाये हैं, फुलवाड़ी लगाई गई है, पुल के सिरे के पास में पक्का घाट बना दिया है, जिससे नहानेवालों को आसानी हो। यात्रियों के बैठने का भी प्रबंध किया गया है। अब यहां सुबह-शाम के समय घूमने-फिरने वालों की अच्छी रौनक रहती है। एक दिन तो हम भी उधर ही नहाये। घाट पर ही बैठकर हमने भोजन किया।"

लक्खू दादा ने कहा, "ये बातें तो हमने घन्नी से भी सुनी थीं। वह अपनी मां कूं हरिद्वार स्नान कराने लें

गया था। पारसाल की बात है। कह रहा था कि हरिद्वार तो अब शहर-सा हो गया है।"

हरिमोहन ने कहा, "दादा, पहले वहां जितने लोग रहते थे, अब उससे दसगुने रहने लगे हैं। अब तो बारहों महीना ही वहां चहल-पहल रहती है।"

भूरे चौधरी ने कहा, "भैया, तुम नहाने की बात कह रहे थे। वहां से आगे का हाल सुनाओ।"

हरिमोहन ने कहा, "हां, हमने हर की पौड़ी पर स्नान किया। वहां एक विशाल कुंड है। इसे 'ब्रह्म-कुंड' भी कहते हैं। इस कुंड की बड़ी महिमा गाई गई है। इसका संबंध अमृत के घड़े से है। कहा जाता है, जब देवता और राक्षसों में लड़ाई हुई तो उन दोनों ने समुद्र को मथा। उसमें से अमृत का एक घड़ा निकला। उसके लिए दोनों ओर से छीना-झपटी हुई। इससे घड़े की एक बूंद ब्रह्मकुंड में भी पड़ गई। फिर क्या था, ब्रह्मकुंड इतना पवित्र माना जाने लगा कि वहां हर बारहवें साल कुम्भ के स्नान का बहुत बड़ा मेला लगता है।"

अतरू ने हुक्का गुड़गुड़ाते हुए कहा, "कुम्भ का मेला तो प्रयाग में होता है। उन्हीं दिनों हरिद्वार में भी मेला होता होगा? सचमुच भैया, यह आदमी बड़े भाग्य

वाला होता है जो यहां आकर स्नान कर पाता है। क्यों भैया, नहाने के लिए यहां घाट बने हैं क्या ?"

"दादा, यहां बहुत-से घाट हैं। सबसे पहले मैं घंटाघर के चबूतरे की बात बताऊंगा। यह चबूतरा इतना विशाल है कि इसपर हजारों आदमी आ सकते हैं। इसके घाटों पर चंदन लगानेवाले बड़ी-बड़ी छतरियां लगाये बैठे रहते हैं, जिनके नीचे यात्री अपने कपड़े रखकर आराम से बैठ सकते हैं। शाम को चबूतरे के दोनों ओर बैठकर मर्द, औरतों और बच्चों की टोलियां गंगा की धारा का आनंद लेती हैं।

"आगे कुछ सेवा-समितियों के दफ्तर हैं। ये समितियां यात्रियों की सेवा करती हैं। यह पक्का चबूतरा बहुत दूर तक चला गया है। इसका एक घाट 'सुभाष-घाट' कहलाता है। यहां सुभाष बोस की मूरती बनी हुई है। इस घाट पर कथा, कीर्तन और भजन खूब होते हैं। गर्मियों में हजारों लोग कथा सुनते हैं।

"पर दादा, तुमने जो यह बात कही कि कुम्भ का मेला प्रयाग में होता है, इन्हीं दिनों हरिद्वार में होता होगा—ऐसी बात नहीं है। प्रयाग में कुम्भ का मेला माघ के महीने में होता है और हरिद्वार में बैसाख के महीने में। बारह-बारह बरस के बाद इन तीर्थ-स्थानों

में कुम्भ-मेले लगते हैं। जब प्रयाग में मेला लगता है उस समय हरिद्वार में मेला नहीं लगता। इन दोनों मेलों के बीच तीन-तीन साल का अंतर रहता है और इन दोनों जगहों का महातम भी अलग-अलग है।"

भूरे चौधरी ने पूछा, "भैया, तुमने तो अपनी ताई को भी इस घाट पर कथा सुनवाई होगी ?"

हरिमोहन ने कहा, "दादा, यह जगह ही ऐसी है कि यहां भगवान की कुछ चर्चा सुनने को मन चाहने लगता है। ब्रह्मकुंड के बीचों-बीच दो मंदिर बने हैं, जो गंगाजी के मंदिर कहलाते हैं। उन तथा दूसरे मंदिरों में रोज शाम को आरती होती है। उस समय की शोभा देखते ही बनती है। घाटों पर सैकड़ों-हजारों आदमी खड़े होकर उस दृश्य को देखते हैं। बहुत-से यात्री गंगाजी में दीये चढ़ाते हैं। पानी पर बहते हुए ये दीये बड़े अच्छे लगते हैं।"

हरिमोहन थोड़ी देर के लिए खो-सा गया, मानो आरती का दृश्य आंखों के सामने आ गया हो और घंटों की ध्वनि सुनाई दे रही हो। फिर चौंककर कहने लगा, "मैं सुभाष-घाट की बात कह रहा था, वहां से आगे 'गो-घाट' है। यहां पर पंडा प्रायश्चित कराता है। आगे कुशावर्त-घाट है। इस घाट की सारी

संपत्ति महारानी अहिल्याबाई ने दान की थी। इन घाटों के अलावा श्रवणनाथ घाट, विष्णु-घाट और गणेश-घाट भी बहुत मशहूर हैं।" श्रवणनाथ घाट के पास में श्रवणनाथ मंदिर भी है। इसे महात्मा श्रवणनाथ की याद में महन्त शान्तानंद ने बनवाया था। मंदिर के अंदर भगवान शंकर की ढाई फुट ऊंची कसौटी की पिण्डी है। इस मंदिर के पीछे की तरफ नन्दी की भी एक बड़ी मूर्ति है। इस मंदिर के पास एक दूसरा मंदिर भी है जो गंगा मंदिर नाम से मशहूर है।

"महात्मा श्रवणनाथ की एक गद्दी है। उसकी तरफ़ से घाट के पास में एक सुंदर भवन भी बना हुआ है। इस भवन में एक पुस्तकालय है। अखबार पढ़ने का भी प्रबंध है। दशहरे के दिन यहां खूब भीड़ थी।

"ऐसे ही गणेशघाट के पास कई छोटे-छोटे मंदिर हैं। एक मंदिर में हनुमानजी की एक बड़ी मूर्ति है। जिस समय गंगाजी से नहर निकाली गई थी तो इसी घाट पर गंगा का पूजन किया गया था। यह घाट नहर के शुरू होने की जगह माना जाता है।"

भतरू चौधरी ने दुबारा हुक्का भरा और दम खींचते हुए कहा, "भैया, तुमने कहा था कि कुण्ड में गंगाजी के दो मंदिर हैं, यहां और भी मंदिर हैं क्या?"

हरिमोहन ने जवाब दिया, "बाबा, हरिद्वार में बहुत-से मंदिर और मठ हैं। पहले मैं उन मंदिरों का हाल सुनाऊंगा, जो ऊंची-ऊंची पहाड़ियों पर बने हुए हैं। यहां के एक पहाड़ की चोटी का नाम है नील पर्वत। इसपर नीलेश्वर महादेव का मंदिर है। कहा जाता है कि भगवान शंकर के एक गण का नाम नील था। उसने शंकर की आराधना की। बाद में यहां महादेवजी का मंदिर बना, जो नीलेश्वर महादेव के नाम से पुकारा जाने लगा। इसकी यात्रा कुछ कठिन है, इसलिए यहांतक कम ही यात्री पहुंच पाते हैं।

"उसी पर्वत पर चंडीदेवी का मंदिर है। इस मंदिर को जम्मू के महाराज सरजीतसिंह ने १८२९ ई० में बनवाया था। इस मंदिर तक आने के लिए दो रास्ते हैं। एक रास्ता गौरीशंकर महादेव मंदिर के पास से जाता है, दूसरा कामराज की काली के मंदिर के पास होकर आता है। पहले रास्ते की चढ़ाई कठिन है। फिर भी यात्री उधर ही से जाते हैं और दूसरे रास्ते से लौटते हैं। लौटने में उनको गौरीशंकर, नीलेश्वर महादेव और नागेश्वर शिवमंदिर के दर्शन हो जाते हैं।

"चंडी-मंदिर के पास, पहाड़ के दूसरी तरफ हनुमान की माता अंजनीदेवी का मंदिर है। इस मंदिर से

नीचे की तरफ बेल के पेड़ों के बीच गौरीशंकर महादेव का मंदिर है, जिसपर यात्री गंगाजल चढ़ाते हैं।

"अब मैं आपको कनखल ले चलता हूं। कनखल गंगाजी के किनारे बसा है। यह हरिद्वार का ही एक भाग है। कनखल के पास गंगा की धारा को 'नीलधारा' कहते हैं। यहींपर दक्षेश्वर महादेव का मंदिर है। उस बारे में एक रोचक कथा है।

"दक्षप्रजापति की पुत्री सती का शिवजी से विवाह हुआ था। दक्ष अपने जमाई शिव से बहुत जलता था। एक बार उसने अश्वमेध यज्ञ किया। उसमें सभी देवताओं को बुलाया, परंतु शिवजी को छोड़ दिया। सती ने सोचा कि उसके पिता के घर यज्ञ हो रहा है तो उसे पहुंचना ही चाहिए। सो बिना न्यौते के सती अपने पिता के घर चली गई। जब राजा दक्ष ने शिवजी की बुराई की तो सती को बड़ा दुख हुआ और वह आग में भस्म हो गई। जब शिवजी को पता चला तो वह वहां क्रोध में भरे आये। उनके गणों ने यज्ञ बिगाड़ दिया और दक्ष का सिर काट दिया। इसके बाद देवताओं ने शिव की स्तुति की। शिवजी प्रसन्न हुए तो उन्होंने दक्ष को जीवित कर दिया। इसके बाद विष्णु भगवान ने सती को भी जिला दिया। इस तरह से दक्षेश्वर महादेव

के मंदिर की स्थापना हुई। उसीके पास सती-ताल है।"

भूरे चौधरी ने कहा, "भैया, यह तो बड़ी मजेदार कहानी है, अब तुम और किसी जगह का हाल सुनाओ।"

हरिमोहन ने कहा, "दादा, अभी कनखल का थोड़ा सा हाल और सुनलो। यहां सावन और भादों के महीने दक्षेश्वर मंदिर में बड़ी चहल-पहल रहती है। कनखल में महंतों के बड़े-बड़े मठ हैं। साधुओं की बड़ी-बड़ी गद्दियां हैं। यहां का निर्मला अखाड़ा तो बहुत ही मशहूर है। कुम्भ के अवसर पर नागा साधु यहीं पर जमा होते हैं। उनके कई-कई हाथी झूमते रहते हैं। यहीं से कुम्भ के मेले पर निकलनेवाली 'साही' के जलूस शुरू होते हैं। यहां के उदासी, निर्मला, निर्वाणी और निरंजनी चार अखाड़े बहुत प्रसिद्ध हैं। इन अखाड़ों के साथ लाखों रुपये की जायदादों का सम्बन्ध है। कुम्भ के मेले पर ये चारों अखाड़े धूमधाम के साथ अपनी-अपनी सवारियां निकालते हैं।

"कनखल के हरिहर आश्रम में एक बड़ा सुन्दर मंदिर अभी कुछ वर्ष पहले बना था, जो मृत्युंजय महादेव-मंदिर नाम से मशहूर है। इसमें मृत्युंजय की बड़ी सुन्दर मूर्ति है।

नाम पर यह ताल है। लोग कहते हैं कि भीम ने

भीमगोड़ा

अपना गोड़ा (पैर) मारकर धरती से पानी निकाला था।"

अतरू ने कहा, "वाह भाई, वाह, हमारे यहां भी कैसे-कैसे वीर थे कि लात मारकर पानी निकाल देते थे।"

हरिमोहन ने कहा, "दादा, भीमगोड़े से आगे करीब दो मील दूर पर सप्तधाराएं हैं। कहा जाता है कि गंगाजी की इस स्थान पर सात धाराएं हो गई थीं। उन सात धाराओं पर सात ऋषियों ने तपस्या

की। उन सातों ऋषियों के नाम पर सात आश्रम बनवाये गए हैं। शिवजी का एक विशाल मंदिर भी है। यहां पर एक गोशाला भी है। आश्रमों में विद्वानों और साधु-महात्माओं के ठहरने आदि का भी प्रबंध है। यह आश्रम अब सप्त-ऋषि-आश्रम के नाम से मशहूर है।

"सप्त ऋषि आश्रम में एक गोशाला भी है। गौओं के रखने लिए मकान और झोंपड़ियां बना दी गई हैं। कथा-वार्ता के लिए एक बड़ा भवन बनाया गया है, जिसमें कई हजार स्त्री-पुरुष एक साथ बैठ सकते हैं। आश्रम की तरफ से आस-पास के रहने वालों के लिए इलाज का भी प्रबंध किया गया है। आश्रम में एक औषधालय खोल दिया गया है। यहां एक बड़ी यज्ञशाला भी बनाई गई। परमहंस स्वामी रामतीर्थ की मूर्ति भी दर्शनीय है।"

यहां की कथा को जारी रखते हुए हरिमोहन ने बताया, "सप्त-ऋषि आश्रम से थोड़ी दूरी पर सत्य-नारायण का मंदिर है। इस मंदिर के पास में ही एक दूसरा मंदिर है, जो [illegible] ना[illegible] है। ऋषिकेश जानेवाले य[illegible] का लाभ उठाते हैं। गरुड़ [illegible] है।

"प[illegible]

आगे चले जाते हैं और जो केवल सत्यनारायण मंदिर के दर्शनों को जाते हैं वे हरिद्वार लौट आते हैं।"

किसी ने पूछा, "क्यों भाई, हरिद्वार में खाने-पीने का क्या इंतजाम है ?"

भूरे ने कहा, "वाह चौधरी, यह तुमने खूब पूछा। अरे, वहां खाने-पीने का कोई टोटा थोड़े ही होगा। सब चीजें मिलती होंगी ?"

हरिमोहन ने कहा, "जो लोग एक दिन के लिए हो जाते हैं वे अपने घर से खाने-पीने का सामान ले जाते हैं। जिनको दो-चार दिन ठहरना होता है, वे धर्मशालाओं में बना लेते हैं। बाजार में सब सामान मिल जाता है। अच्छा यही है कि गर्म और ताजा खाना खाया जाय। वैसे बाजार में भी चावल, दाल, रोटी, पूड़ी आदि मिल जाती हैं। अब तो बहुत-से होटल भी खुल गये हैं। तरह-तरह के फल भी मिल जाते हैं। इसलिए खाने-पीने की कोई परेशानी नहीं होती।"

अतरू ने ज्वालानाथ की ओर संकेत करते हुए "क्यों ज्वालानाथ, तुमने तो हरिद्वार की मिठाइयों आनंद लिया होगा ?"

नाथ ने उत्तर दिया, "अजी, कुछ न पूछो। मौज रही।"

भूरे ने पूछा, "क्यों भैया, हरिद्वार में तो मेले भी बहुत-से होते रहते हैं। तुमने कुंभ मेले की बात कही थी।"

हरिमोहन ने कहा, "दादा, यहां सबसे बड़ा मेला तो कुम्भ का होता है। इसमें हमारे देश के सभी हिस्सों से लाखों आदमी पहुंचते हैं। यह मेला बारहवें साल लगता है। गोघाट के सामने गंगा की दूसरी ओर नहरवालों का एक बहुत बड़ा मैदान है। इस मैदान में एक बड़ा नगर-सा बस जाता है। लोग दुकान लाकर बाजार लगाते हैं। नाटक और खेल-तमाशों की चहल-पहल रहती है। मेले की यह धूम दो हफ्ते तक रहती है। दूसरा मेला अर्द्ध-कुम्भी का भी इसी मैदान में होता है। इनके अलावा पूर्णमासी, अमावस्या, गंगा-दशहरा पर भी खूब भीड़ होती है और चंद्रग्रहण के मौकों पर भी मेले लगते हैं। जहां कुम्भ और अर्द्ध-कुम्भी के मेले लगते हैं, उस जगह को 'रोड़ीवाला टापू' कहते हैं।"

भूरे चौधरी ने कहा, "सुना है, कुम्भ पर हजारों साधु-महात्मा आते हैं और उनके हाथियों पर जलूस निकलते हैं। क्यों, यह ठीक है?"

जतरू ने कहा, "चौधरी, साधुओं के अब क्या जलूस निकलेंगे! कोई जमाना था जब साधु राजा-

महाराजाओं की तरह से अम्बारियों में बैठते थे। पर अब तो जमाना बदल गया। साधुओं को भला अब कौन पूछे है ?"

हरिमोहन ने कहा, "दादा, ऐसी बात नहीं है। सरकार अभी तक साधुओं की पुरानी परंपरा को निभाती है। कुम्भ पर साधुओं के अखाड़े निकलते हैं। साधुओं के कई फिरके हैं। सब अपने-अपने ढंग से साज-सामान के साथ जलूस निकालते हैं। ये जलूस 'साही' कहलाते हैं। पहले नागा साधुओं के जलूस निकालने का नियम है। उसके बाद और साधु अपने-अपने जलूस निकालते हैं। सरकारी अफ़सर इन जलूसों का पूरा प्रबंध करते हैं। पुलिस भी काफ़ी साथ में रहती है, क्योंकि लाखों आदमियों की भीड़ को काबू में रखने का सवाल बड़ा होता है।"

भूरे चौधरी ने कहा, "वाह भैया, वाह! हमने तो कुम्भ के जलूस का घर बैठे ही आनंद ले लिया। अच्छा भैया, हरिद्वार में और क्या-क्या है ? सुना है, यहां एक गुरुकुल भी है ?"

हरिमोहन बोला, "दादा, मैं गुरुकुल की बात सुनाने ही वाला था। हरिद्वार में सबसे बड़ा गुरुकुल, कांगड़ी गुरुकुल के नाम से मशहूर है। अब तो यह

विश्वविद्यालय हो गया है । इसे हमारे देश के नेता स्वामी श्रद्धानंद ने स्थापित किया था। पहले यह गंगा के पार कांगड़ी गांव के पास था और अब कनखल के पास है। यहां के वेद-मंदिर, आयुर्वेद भवन, अस्पताल, बगीचे, छात्रावास देखने लायक हैं। इसमें हजारों विद्यार्थी ऊंची शिक्षा पाते हैं।

"ज्वालापुर का महाविद्यालय भी पुराना गुरुकुल है। इसे स्वामी दर्शनानंद महाराज ने स्थापित किया था। यहां विद्यार्थियों की संस्कृत की मुफ्त पढ़ाई होती है।

"हरिद्वार में कन्या गुरुकुल और ऋषिकुल भी है। ऋषिकुल के साथ आयुर्वेद ऋषिकुल कालिज भी चलता है।"

भूरे चौधरी ने पूछा, "वहां का कोई और मंदिर तो नहीं रह गया?"

हरिमोहन ने कहा, "दादा, हरिद्वार में मंदिरों की क्या कमी है! कई पुराने मंदिरों का हाल मैं सुना चुका हूं। हां, एक नया मंदिर ऐसा है, जिसको देखकर मन प्रसन्न हो जाता है। इस मंदिर का नाम है—'गीता-भवन'। रेलवे स्टेशन से शहर की ओर जाते हैं तो चौराहे पर पहले भगवान मृत्युंजय की संगमरमर की

मूरती मिलती है। एक सुंदर फव्वारे के बीच यह मूरत बनी है। उसके सिर पर बराबर पानी गिरता रहता है। उससे कुछ दूर चलने पर एक पुल आता है। उसके पास से ही एक रास्ता गीता-भवन को जाता है। इसमें रोज सवेरे कथा होती है। गीता से संबंध रखनेवाले सुंदर-सुंदर चित्र इसमें हैं। भवन के एक हिस्से में कृष्ण की विशाल मूर्ति है। हां, एक मंदिर की बात बताना भूल गया था। वह है मनसादेवी का। शहर के बीच से वहां के लिए एक रास्ता जाता है। ऊंची पहाड़ी पर यह मंदिर बना है।"

लक्खू दादा ने पूछा, "भैया, हमने लछमन-झूले का नाम बहुत सुना है। कुछ उसका हाल भी तो बताओ?"

हरिमोहन ने कहा, "दादा, लछमन-झूला हरिद्वार से काफी दूर है। वहां जाने के लिए पहले ऋषिकेश जाना होता है। हरिद्वार के नाम के साथ-साथ ऋषिकेश का भी नाम आता है। इसलिए वहां की भी कुछ कथा सुन लो।

"ऋषिकेश पहले साधु-महात्माओं के निवास की जगह थी, पर धीरे-धीरे वहां भी बस्ती बस गई और अब तो एक अच्छा कस्बा हो गया है। यहां भी बहुत-से

मंदिर हैं। कई बड़े-बड़े क्षेत्र हैं। बाबा कालीकमलीवालों का क्षेत्र बहुत विख्यात है। क्षेत्र के सैकड़ों कर्मचारी यात्रियों के प्रबंध के लिए नियत हैं। साधु-महात्माओं को मुफ्त भोजन दिया जाता है। यात्रियों के ठहरने के लिए धर्मशाला का प्रबंध है। बाबा कालीकमली-वाले की तरफ से गंगोत्तरी और बदरीनाथ के रास्तों में भी धर्मशालाओं का प्रबंध है।

"दूसरा बड़ा क्षेत्र पंजाबसिंध क्षेत्र के नाम से मशहूर है। इसमें हजारों यात्री एक साथ ठहर सकते हैं। इन दोनों के अलावा यहां और भी बहुत-सी धर्मशालाएं हैं। यहां गंगा का बड़ा सुन्दर घाट है। घाट के पास कई मंदिर बने हैं। गरमी के दिनों में घाट के पास कथा-वार्ता भी होती है।"

भूरे चौधरी ने चिलम में दम लगाते हुए कहा, "भैया, अब लक्खू दादा को लछमन-झूले का हाल भी सुना दो।"

हरिमोहन ने कहा, "चौधरीजी, ऐसी क्या जल्दी है? लछमन-झूला तो आपको भगवान राम की याद दिलावेगा। अच्छा सुनो। जब भगवान राम अपने भाई लछमन के साथ तप करने के लिए पर्वतों में गये तो इस स्थान पर लछमन ने तप किया। उनके नाम पर

लछमण-मंदिर बनाया गया। यहां से गंगा पार जाने के लिए जो पुल बना वह लछमन-झूला नाम से मशहूर हुआ। अब तो इस पुल के पास में काफी बस्ती बस गई है।

"गंगा के दूसरे किनारे पर गीता-भवन और स्वर्गाश्रम हैं। गीताभवन में श्रद्धालु यात्रियों के रहने का भी प्रबंध है। गर्मियों में यहां खूब रौनक रहती है। स्वर्गाश्रम में साधु-महात्माओं के रहने व खाने-पीने का प्रबंध है। गंगापार आने-जाने के लिए आश्रम की तरफ से नाव भी चलती है।"

भूरे चौधरी ने कहा, "भैया, राम और लछमण तो पहाड़ों में ही मर-खप गये थे ?।"

"हां चौधरी! यही कहा जाता है कि वे फिर नहीं लौटे। इसी तरह से पांचों पाण्डव भी इधर से पहाड़ों में गये थे और वे भी फिर कभी लौटकर नहीं आये।"

ऋषिकेश की कथा को जारी रखते हुए हरिमोहन ने बताया, "यहां स्वामी शिवानंद का आश्रम भी दर्शनीय है। आश्रम के साथ एक दवाखाना भी है। यहां कथा-वार्ता का भी प्रबंध है। बहुत से साधु-महात्मा यहां भी निवास करते हैं।"

भूरे चौधरी ने कहा, "भैया, अब तो हम खुद ही किसी मौके पर यहां की सैर करेंगे।"

हरिमोहन ने कहा, "जरूर जाइए, बाबा! बड़ी सुंदर जगह है। वहीं से हमारे देश की सबसे बड़ी गंग नहर निकाली गई है। सौ साल से भी ज्यादा हो गये, जब काटले नाम के एक अंग्रेज ने यह काम किया। हरिद्वार से दो मील ऊपर से यह नहर निकाली। इस नहर से लाखों बीघे भूमि की सिंचाई होती है और इसपर बहुत-से बिजलीघर भी बनाये गये हैं, जिनसे हमें बिजली मिलती है।"

भूरे चौधरी ने कहा, "इसी नहर का एक बम्बा (रजवाहा) तो हमारे गांव के पास से आ रहा है। हमारी ईख को उससे ही पानी मिलता है।"

हरिमोहन ने कहा, "बस अब एक बात और रह गई। वह है यहां का बाजार। बाजार में दोनों तरफ की दुकानों पर बड़ी भीड़ लगी रहती है। मेलों के दिनों में तो रास्ता चलना ही कठिन हो जाता है। दुकानों पर सब तरह की चीजें मिलती हैं। खिलौनों की तो भरमार रहती है। छपी साड़ियां भी खूब बिकती हैं। हरिद्वार का प्रसाद तो सब खरीदते ही हैं। तरह-तरह की शीतल-पाटियां, कूंडियां और कंठी-मालाएं मेले के दिनों में खूब बिकती हैं। छोटी-बड़ी सब चीजें बाजार में मिल जाती हैं।"

काफ़ी देर होगई थी, पर कोई भी जाने की जल्दी

में नहीं था। सब चाहते थे कि हरिद्वार के बारे में उन्हें पूरी जानकारी मिल जाय, कौन जाने कब वहां जाने का मौका मिल जाय, और न भी जाना हो तो भी तीरथों और अच्छी जगहों के हाल सुनकर खुशी तो होती है।

भूरे चौधरी ने कहा, "भैया, तुम भी खूब हो! सारी रामायण सुनावी, पर यह नहीं बताया कि वहां पहुंचते कैसे हैं?"

हरिमोहन ने कहा, "वहां मोटरें जाती हैं और रेल भी। जो जहां से जाना चाहें, अपना सुभीता देखलें।"

किसीने पूछा, "कोई बैलगाड़ी से जाना चाहे तो?"

इस सवाल पर सब हंस पड़े। हरिमोहन ने मुस्कराते हुए कहा, "पास की ही जगह से जाना हो तो बैलगाड़ी से जाने में हर्ज नहीं है, रखो बैलगाड़ी में सामान, खुद बैठो और चल दो। अपनी सवारी, जहां चाहो रोकलो। मोटर और रेल तो अपनी जगह पर ही रुकती है। लेकिन अगर दूर से जाना है तो फिर रेल या लारी से ही जाना होगा, पर सच बात तो यह है कि जो मजा पैदल चलने में आता है, वह सवारी पर हर्गिज..."

लक्खू ने बात काटते हुए कहा, "भैया, तुम्हारी बात ठीक है, हमारे पुरखा जब तीरथ करने जाते थे, तब पैदल ही जाते थे, पर अब जमाना बदल गया है। न किसीके पास इतना समय है और न देह में उतना कस। अब तो मोटर या रेल में बैठे और झट्ट पहुँच गये। क्यों, है न ?"

हरिमोहन ने कहा, "जिसको जैसा सुभीता हो, देख लेना चाहिए।"

भूरे चौधरी ने कहा, "वाह, भैया! वाह, तुमने तो यहीं बैठे तीरथ के दर्शन करा दिये। कितना सुंदर है हरिद्वार और कितनी मानता है उसकी!"

चित्रकूट

: १ :

प्राचीन महत्त्व

चित्रकूट हमारे देश का एक बहुत पुराना तीर्थ है
यहां जाने के लिए कर्वी रेलवे स्टेशन पर उतर
चाहिए। कर्वी स्टेशन झांसी और मानिकपुर रेल
लाइन पर है।

चित्रकूट आने के लिए चित्रकूट स्टेशन भी है
चित्रकूट जितनी दूर कर्वी से पड़ता है, उतनी ही
चित्रकूट रेलवे स्टेशन से पड़ता है। कर्वी से चित्र
पांच मील है। परन्तु यात्रियों को कर्वी से चित्र
आने-जाने में अधिक सुविधा है। यहां से मोटर-
चलती हैं। घोड़े-तांगे भी मिलते हैं।

चित्रकूट बहुत-से स्थानों का समूह है। पांच
मील में बहुत-सी जगहें फैली हुई हैं। वैसे मुख्य स्थ
सीतापुर है। उसीका दूसरा नाम चित्रकूट है। यह
बड़ा कस्बा है। इसीमें यात्रियों के ठहरने का प्रबन्ध

और अब इसे कर्वी-नगरपालिका में ही मिला दिया है। कर्वी और सीतापुर दोनों अब मिलते जा रहे हैं। सीतापुर का विस्तार होना चित्रकूट की शोभा का बढ़ जाना है। सीतापुर से कामद-गिरि तक का सारा भाग एक-दूसरे से जुड़ता जा रहा है।

त्रेता-युग के भगवान राम की कथा के साथ चित्रकूट का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। यह तीर्थ मन्दाकिनी नदी के किनारे पर है। मन्दाकिनी का दूसरा नाम पयस्विनी भी है। यह नदी विन्ध्याचल पहाड़ के बीच बहती है।

चित्रकूट की महिमा का मुख्य कारण यह है कि जब भगवान राम सीता और लक्ष्मण के साथ चौदह बरस के लिए वनवास को गये, तब उन्हों ने अपना अधिकतर समय चित्रकूट में ही बिताया था। वह यहां कोई बारह बरस रहे थे। यहां के वन-पर्वतों में रहनेवाले मुनियों और तपस्वियों ने राम के वहां रहने को अपना सौभाग्य समझा और यहां के भील, कोल और किरात लोगों ने उनकी पूरी तरह से सेवा की।

महाकवि तुलसीदास ने रामायण में चित्रकूट की महिमा का बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है :

चित्रकूट महिमा अमित, कही महामुनि गाइ।
आइ नहाये सहित वर, सिय समेत दोउ भाइ ॥

तुलसीदास ने चित्रकूट की महिमा को अपार बताया है। उसका वर्णन करना कठिन था। वहां की पवित्र नदी पर राम-लक्ष्मण दोनों भाई सीताजी के साथ नहाये।

जिस समय राम चित्रकूट में आये, यहां के रहने-वालों ने उनके लिए दो सुन्दर कुटियां बनाई। तुलसी दासजी लिखते हैं :

कोल किरात वेष सब आये,
रचे परन तृन सदन सुहाये॥
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला,
एक ललित लघु एक बिसाला॥

—राम की कुटी बनाने के लिए देवता कोल और किरातों का रूप रखकर आगये। उन्होंने पत्तों और तिनकों से सुन्दर घर बना दिये। बड़ी सुन्दर कुटियां बनाई गईं, जिनकी शोभा का बखान नहीं किया जा सकता। इनमें एक कुटी छोटी थी, दूसरी बड़ी।

छोटी लक्ष्मण के रहने के लिए थी, बड़ी रामचन्द्र और सीता के रहने के लिए थी। जब ये कुटियां बन गईं और राम, लक्ष्मण तथा सीता ने रहना शुरू कर दिया, तब आसपास के मुनि चित्रकूट आये और उन्होंने राम से भेंट की। रामचन्द्र ने सबको प्रणाम किया। उन सबने राम के दर्शनों का लाभ उठाया।

मुनियों ने राम को गले लगाया और उनको अनेक तरह का आशीर्वाद दिया।

वन में रहनेवाले कोल और किरात बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने वन के फल, फूल और कन्द-मूल इकट्ठे किये और दोनों में भरकर राम को देने के लिए लाये। राम के पास आकर उन्होंने वे सब उनके सामने रख दिये। वे राम को बार-बार देखते थे और मन-ही-मन पुलकित होते थे। कहने लगे, "हमारा धन्य भाग्य है, जो आप चित्रकूट आये। आपके यहां आने से हम सब सनाथ होगए।"

धन्य भूमि वन पंथ पहारा,
जहं जहं नाथ पाउं तुम्ह धारा॥
धन्य विहग मृग काननचारी,
सफल जनम भए तुम्हहिं निहारी॥

वन के कोल और किरात कहने लगे, "हे नाथ, जहां-जहां आपने अपने चरण-कमल रक्खे हैं, वहां के पहाड़, वन, रास्ते और भूमि सब धन्य होगये हैं। वन में घूमनेवाले पशु-पक्षी तक आपको देखकर अपने-आप को धन्य मानते हैं।"

कीन्ह वासु भल ठाउं विचारी,
इहां सकल रितु रहब सुखारी॥

नये स्थान का परिचय देते हुए उन्होंने राम से

कहा, "आप यहां रहिये; यह बड़ी अच्छी जगह है। यहां सभी मौसमों में रहने का आनन्द है। आपको किसी तरह का कष्ट नहीं होगा। हम आपकी सेवा में रहेंगे। यहां की चप्पा-चप्पा भूमि हमारी देखी हुई है।"

उन्होंने राम के सामने चित्रकूट के वन, पर्वत, पशु और पक्षियों का ऐसा सुन्दर वर्णन किया कि राम को भी इस भूमि के साथ प्रेम होने लगा।

चित्रकूट में बहुत-से मुनि रहते थे। उनकी स्त्रियां भी उनके साथ रहती थीं। राम, लक्ष्मण और सीता के वहां रहने पर सभी उनके यहां आने-जाने लगे। सीता को मुनियों की स्त्रियों से ऐसा प्रेम होगया कि उन्होंने उन्हें अपनी सासु के समान मान लिया।

राम के निवास के साथ-साथ राम और भरत के मिलने का इतिहास भी चित्रकूट से जुड़ा है। जब राम वन में चले आये और भरत अपने नाना के यहां से अयोध्या लौट आये, तब वह राम के वनवास का समाचार सुनकर बड़े दुखी हुए।

भरत ने गुरु वसिष्ठ और माताओं से आग्रह किया कि रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीताजी को वन से वापस लाया जाय। सीता के पिता राजा जनक भी उस समय अयोध्या आये हुए थे। सबकी यही सलाह

हुई कि वे भरत के साथ राम को लौटाने के लिए वन को जायं।

निश्चय हो जाने पर सब चित्रकूट की ओर चले। भरत के साथ हजारों अयोध्या-वासी गये।

चित्रकूट पहुंचकर भरत और दूसरे लोगों ने राम से अनुरोध किया कि वे अयोध्या लौट चलें, परन्तु राम किसी तरह भी अयोध्या वापस जाने के लिए तैयार नहीं हुए। इससे भरत का मन बहुत ही दुखी हुआ। चित्रकूट में वे सब कई दिन तक ठहरे। अन्त में भरत ने राम से विनती की कि वे अपनी कोई ऐसी निशानी दे दें, जिसकी वे पूजा करते रहें और राज का काम चलाते रहें।

राम ने उनको अपनी खड़ाऊं दे दीं। भरत उन्हें अयोध्या ले आये और उनके सहारे उन्होंने चौदह बरस तक अयोध्या का राज-काज चलाया।

रामचन्द्र के चित्रकूट में निवास करने से वहां के वन-पर्वत बड़े ही सुहावने लगने लगे। तुलसीदास ने उनका वर्णन करते हुए लिखा है :

> जब तें आइ रहे रघुनायकु,
> तबतें भयउ बनु मंगलदायकु ॥

फूलहिं फलहिं विटप विधि नाना,
मंजु बलित बर बेलि बिताना ॥
सुरतरु सरिस सुभायं सुहाये,
मनहुं विबुध वन परिहरि आये ॥

वैसे तो जहां भी आदमी रहने लगते हैं, वहीं पर सुन्दरता आ जाती है, फिर राम तो अयोध्या के राजा के पुत्र थे। उनको ही अयोध्या का राज-सिंहासन संभालना था। दूसरे वे देवताओं के भी प्यारे थे। उन-पर सभी अपना सबकुछ न्योछावर कर देने को तैयार थे। ऐसी दशा में चित्रकूट की शोभा का बढ़ जाना स्वाभाविक ही था।

चित्रकूट के साथ महाकवि तुलसीदास की भी एक घटना जुड़ी हुई है। कहा जाता है, तुलसीदास राम के दर्शन करने के लिए बड़े लालायित थे। उन्होंने अपना इष्टदेव हनुमान को बनाया था। उनको एक दिन स्वप्न आया कि राम चित्रकूट में दर्शन देंगे। वे राम के दर्शनों के लिए और भी उतावले हो उठे।

तुलसीदास चित्रकूट पहुंचकर मन्दाकिनी नदी के घाट पर बैठे चंदन घिस रहे थे कि राम वहां आये और उनसे चंदन लगवाकर चले गये। इस सम्बन्ध में एक दोहा भी प्रसिद्ध है :

चित्रकूट के घाट पर, भई सन्तन की भीर।
तुलसिदास चन्दन घिसें तिलक देत रघुबीर॥

इस कथा का आशय यही है कि तुलसी ने भगवान
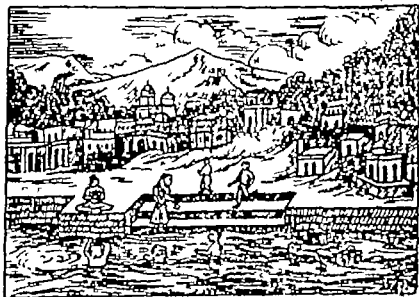
राम की चित्रकूट में वर्षों आराधना की और मानसिक रूप में उनको पा लिया। उनके नाम पर मंदाकिनी नदी के किनारे तुलसी-मन्दिर बना हुआ है।

इस तरह से चित्रकूट का सम्बन्ध राम के त्रेतायुग और महाकवि तुलसी के वर्तमान युग के साथ जुड़ा हुआ है। लंका को जीतकर जब राम अयोध्या लौटे, तब भी वह यहां कुछ समय ठहरे थे।

वाल्मीकि और तुलसीदास की रामायणों के

अलावा महाभारत-काल में पाण्डव यहां रहे थे।

इसके उपरान्त हर्ष के समय के इतिहास में चित्रकूट का वर्णन मिलता है। महाराजा हर्ष ने चित्रकूट पर शासन किया। चित्रकूट उनके राज का एक अंग था। इसके बाद यहां पर बुन्देलों ने राज किया। मुगल-काल में अब्दुल हमीद नाम के एक सरदार ने यहां हुकूमत की। उसने धार्मिक भावनाओं को लेकर यहां आनेवाले यात्रियों को बहुत सताया।

महाराज छत्रसाल और अब्दुल हमीद में युद्ध हुआ। छत्रसाल ने उसको हरा दिया था। यह युद्ध सन् १६६० ई० के आसपास हुआ था।

पन्ना राज्य से चित्रकूट का सम्बन्ध कई सौ वर्षों तक रहा। राज की ओर से यहां के घाटों की देखभाल की जाती थी। यहां कामद-गिरि के चारों ओर पत्थर से बनाया गया रास्ता है, जिसे 'कामदगिरि-परिक्रमा' कहते हैं। यह पक्का मार्ग महाराजा छत्रसाल की धर्म-पत्नी महारानी चन्द्रकुंवरि ने अपने पति के मरने के बाद लगभग १७५२ ई० में बनवाया था।

जिस समय पन्ना राज्य का चित्रकूट पर अधिकार था, सीतापुर कस्बे को जयसिंहपुर कहते थे। पन्ना के राजा अमानसिंह ने जयसिंहपुर को चित्रकूट के महन्त

चरनवास को दान कर दिया था। दान में मिल जाने पर महन्त ने इस स्थान का नाम सीताजी के नाम पर सीतापुर रख दिया। उस समय से सरकारी कागजों में इसका नाम सीतापुर ही आता है।

कामदगिरि-पर्वत की परिक्रमा करते समय मुझे बहुत-सी बातें सुनने को मिलीं। इस परिक्रमा को मनो-कामना पूरी करनेवाली समझा जाता है। यहां पर मैंने कुछ धार्मिक लोगों को पेट के बल यात्रा करते देखा। उनके एक हाथ में नारियल या गोला था। लेटकर हाथ बढ़ाकर जहां नारियल रख दिया जाता था, वहां

पैर आ जाने पर फिर पेट के बल लेटकर हाथ से नारियल को आगे खिसका दिया जाता था। यह यात्रा तीन मील की है।

कामदगिरि के सम्बन्ध में कहा जाता है कि इसकी एक चोटी पर भगवान राम ने अपनी कुटी बनवाई थी, इसी कारण बहुत-से भक्तों का यह विश्वास होगया कि इसकी परिक्रमा करने से भगवान राम उनकी मनोकामना पूरी कर देते हैं। परिक्रमा नंगे पैरों की जाती है। हमें इसका पता न था। रास्ते में कुछ श्रद्धालु नर-नारियों ने जूते उतारने को कहा तो हमारा ध्यान उस ओर गया। फिर हमने और हमारे साथियों ने जूते एक झोले में रखकर अपनी परिक्रमा पूरी की।

जहां से परिक्रमा आरम्भ होती है, उसे मुखार-विन्द कहते हैं। परिक्रमा में बहुत-से मन्दिर मिलते हैं। इनमें रामजी का स्थान, तुलसी-स्थान, भरत-मिलाप-स्थान, भरत व केकई-मंदिर, चरण-पादुका मंदिर और लक्ष्मण-मंदिर बहुत प्रसिद्ध हैं। पुजारी इन सबका अलग-अलग माहात्म्य बताते हैं और यात्री अपनी हैसियत के हिसाब से चढ़ावा चढ़ाते हैं।

जो यात्री यहां पांच-छः दिन ठहरते हैं, वे सभी स्थानों के दर्शन करते हैं। इनके बड़े सुन्दर-सुन्दर नाम

हैं। इन सबको तीर्थ मान लिया गया है। पहले दिन की यात्रा कामदगिरि के नाम से प्रसिद्ध है। दूसरे दिन यात्री को कोटतीर्थ, देवांगना, हनुमान गढ़ी, सीता-रसोई और हनुमानधारा की यात्रा कराई जाती है। यह पूरी यात्रा कोई बारह मील की है।

: २ :

दर्शनीय स्थान

कोटतीर्थ के बारे में कहा जाता है कि यहां देवताओं ने भगवान राम के दर्शन किये थे, जबकि वे वनवास के समय में यहां पर रहे थे। इस स्थान को ऋषियों और मुनियों की तपोभूमि कहा जाता है। महर्षि कोटेश्वर ने भी यहां तप किया था। यह ऊंची पहाड़ी पर है। जल के झरनों का सुन्दर दृश्य भी यहां देखने को मिलता है।

देवांगना में देव-कन्या ने तपस्या की थी। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान ने उसे दर्शन दिये थे। देवकन्या के नाम पर एक मंदिर भी यहां बना है। यात्री उसकी पूजा करते हैं। इस स्थान पर भी एक झरना है।

देवांगना से पहाड़ी मार्ग से चलकर यात्री हनुमान-

गढ़ी पहुंचते हैं। इसे एक छोटा-सा गांव या किसी बड़े कस्बे का मोहल्ला समझना चाहिए। गांव के बाहर बरगद के पेड़ के नीचे हनुमानजी का एक छोटा-सा मंदिर है।

हनुमानगढ़ी से थोड़ी दूर पहाड़ पर एक स्थान 'सीता-रसोई' के नाम से प्रसिद्ध है। श्रद्धालु यात्री समझते हैं कि वनवास-काल में इसी स्थान पर सीताजी ने रसोई बनाई थी। परन्तु ऐसा समझना ठीक नहीं, क्योंकि भगवान राम का निवास कामदगिरि माना गया है। जब राम वहां रहते थे, तब सीताजी यहां इतनी दूर पर रसोई बनाने क्यों आतीं!

सीता-रसोई से यात्री हनुमानधारा जाते हैं। यह स्थान ढाल पर है। यहां हनुमानजी की एक बड़ी मूर्ति है। किसी समय इस मूर्ति की छाती पर जल का झरना गिरता था। परन्तु अब एक नल द्वारा पानी एक कुण्ड में जमा कर लिया जाता है।

जिस जगह हनुमानजी की मूर्ति है, वहां से नीचे आने के लिए सीढ़ियां बनी हैं। इनकी संख्या तीन सौ से भी अधिक है।

इस स्थान पर लंगूर बहुत हैं। यात्रियों के हाथ से ये खाने-पीने की चीजें ले लेते हैं। किसीपर झपटते

नहीं, परन्तु लाल मुंह के बन्दर यात्रियों को बहुत परेशान करते हैं।

चित्रकूट में भी प्रयाग की कल्पना की गई है। दो नदियों के संगम को प्रयाग कहा जाता है। जैसे हिमालय में अलकनन्दा और भागीरथी दो नदियों के संगम का नाम देवप्रयाग है, वैसे ही इलाहाबाद में गंगा और यमुना के संगम को प्रयाग कहते हैं। सीतापुर से पयस्विनी नदी के घाटों को पार करने पर एक घाट 'राघव-घाट' के नाम से प्रसिद्ध है। इस घाट पर त्रिवेणी की कल्पना की जाती है। जिस तरह प्रयाग में गंगा, यमुना और सरस्वती के मिलने से त्रिवेणी बनती है, वैसे ही किसी समय यहां भी जल की तीन धाराएं मिलती थीं।

राघव प्रयाग-घाट के पास के नाले को पार करने पर मध्यप्रदेश की सीमा आ जाती है। थोड़ी दूर पर मध्यप्रदेश-सरकार के वन-विभाग का एक विश्रामालय है।

इस विश्रामालय से कुछ दूरी पर एक सुन्दर मंदिर बनाया गया है, जो 'राम-मंदिर' नाम से प्रसिद्ध है। यह मंदिर एक सड़क के किनारे बना है। इसके सामने की ओर 'प्रमोद वन' है। इस वन के चारों ओर पक्की चहारदीवारी बनी हुई है। यहां एक मंदिर है, जो

लक्ष्मीनारायण मंदिर के नाम से विख्यात है ।

प्रमोद वन पहले रीवां राज्य में सम्मिलित था और यहां राज्य की सेना रहा करती थी । वन की चहार-दीवारी के अन्दर बहुत-सी कोठरियां बनी हुई हैं । इन के सम्बन्ध में कुछ का कहना है कि यहां किसी समय बस्ती थी । कुछ लोगों का कहना है कि ये कोठरियां
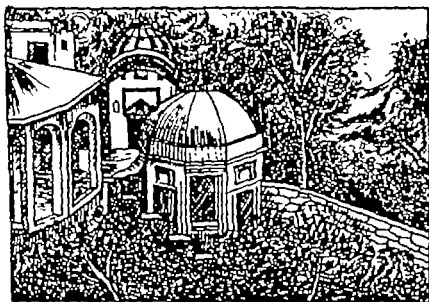
सैनिकों के ठहरने के लिए बनाई गई थीं । कुछ यह भी कहते हैं कि यहां साधु-महात्मा रहा करते थे ।

सीताजी के नाम पर यहां एक जानकी-कुण्ड है । प्रमोद वन से आधा मील चलना पड़ता है । छालदार

भूमि पर पयस्विनी-नदी बहती है। इसके एक किनारे के घाट को 'जानकी-कुण्ड' कहते हैं। इस सम्बन्ध में ऐसा समझा जाता है कि यहां सीताजी स्नान करती थीं। उस समय के चरण-चिह्न भी यात्रियों को दिखाये जाते हैं। बहुत-से यात्री यह विश्वास कर लेते हैं कि सीताजी के बराबर स्नान के लिए आने से ये चरण-चिह्न बन गये हैं। यात्री इनपर श्रद्धा और भक्ति के साथ जल चढ़ाते हैं।

इस स्थान पर मिट्टी के ऊंचे-ऊंचे टीले हैं। न जाने कितनी शताब्दियों से इन टीलों का निर्माण हो रहा है। इनमें साधु-महात्माओं ने रहने के स्थान बना लिये हैं। यहां सन्त रणछोरजी का स्थान है। जानकी-कुण्ड के पास बन्दर बहुत हैं। कभी-कभी तो यात्रियों को भोजन करना कठिन हो जाता है। कुण्ड में पालतू मछलियां हैं। यात्री इनको आटे की गोलियां खिलाते हैं। धार्मिक दृष्टि से यहां मछलियां नहीं पकड़ी जा सकतीं। सरकार ने मछली पकड़ने पर रोक लगाई हुई है।

स्फटिक-शिला के सम्बन्ध में रामायण में लिखा है कि यहां राम और सीताजी बैठकर पयस्विनी नदी का आनन्द लिया करते थे। तुलसीदास लिखते हैं :

एक बार चुनि कुसुम सुहाये,
निज कर भूसन राम बनाये ।।
सीतहि पहिराये प्रभु सादर,
बैठे फटिक-सिला पर सुन्दर ।।

भगवान राम ने यहाँ सुन्दर-सुन्दर फूल चुने और अपने हाथों उनके गहने बनाकर सीताजी को पहनाये ।

राम और सीताजी स्फटिक-शिला पर बैठा करते थे । उसपर पैरों के निशान हैं । लोग इनको भगवान राम के चरण-चिह्न मानकर पूजते हैं ।

स्फटिक-शिला जाने के लिए जानकी-कुण्ड से एक

रास्ता जाता है। थोड़ी दूर पर सिरसा-वन नाम का एक स्थान है। यहां एक मंदिर है। उसके पास ही एक कुआं है। वृक्षों की छाया में यात्री यहां विश्राम करते हैं। कुछ साधु-महात्मा रहते हैं। इस स्थान से स्फटिक-शिला लगभग एक मील की दूरी पर है। दो चट्टानें हैं। इनमें से एक का सम्बन्ध भगवान राम से है। चट्टानें पयस्विनी नदी की जलधारा को छूती हैं। बड़ा ही सुन्दर दृश्य दिखाई पड़ता है। नदी के दूसरे किनारे पर वृक्षों की कतारें दिखाई देती हैं।

चित्रकूट के पास ही एक जगह अत्रिमुनि के आश्रम के नाम से प्रसिद्ध है। पत्थर की चिकनी चट्टानों पर बना यह स्थान बड़ा ही सुनसान-सा है। एक महात्मा यहां रहते हैं।

जिस समय भगवान राम चित्रकूट आये, उन्होंने अत्रिमुनि से भेंट की थी। मुनि ने अपने आश्रम में उनका स्वागत-सत्कार किया था और श्रीराम को आशीर्वाद दिया था।

अत्रिमुनि की पत्नी अनसूया भी आश्रम में रहती थीं। राम के अपने आश्रम में आने पर वह बड़ी प्रसन्न हुईं। महाकवि तुलसी ने सीताजी की भेंट का वर्णन करते हुए लिखा है :

अनसुइया के पद गहि सीता,
मिली बहोरि सुसील बिनीता ।।
रिसि-पतिनी मन सुख अधिकाई,
आसिस देइ निकट बैठाई ।।

परम शीलवान और मीठी वाणी बोलनेवाली सीता ने जब अत्रि ऋषि की पत्नी अनसूया के पैर छुए तो उनको बड़ी प्रसन्नता हुई। बड़ों का आदर-सत्कार करना इस देश की प्राचीन संस्कृति का गुण रहा है। अनसूया ने प्यार के साथ सीताजी को अपने पास बिठाया। सीता और अनसूया की भेंट का वर्णन करते हुए तुलसीदास लिखते हैं :

दिव्य बसन भूसन पहिराये,
जे नित नूतन अमल सुहाये।
कह रिसिबधू सरस मृदु बानी,
नारि धर्म कछु ब्याज बखानी ।।

अनसूया ने सीताजी को सुन्दर-सुन्दर कपड़े और गहने पहनाये। ये कपड़े और गहने ऐसे थे कि सदा नये और सुहावने बने रहते थे। अनसूया ने सीताजी को नारी-धर्म का उपदेश दिया। अन्त में आशीर्वाद देते हुए उन्होंने कहा कि सीता, तुम तो ऐसी नारी हो, जिसका नाम लेने से ही नारियों में धर्म का पालन

करने का विचार पैदा होगा।

सीताजी को अनसूया के उपदेश सुनकर बहुत सुख मिला और उन्होंने उसका आभार माना। इस तरह चित्रकूट के साथ सीता और अनसूया की भेंट की कथा का जुड़ जाना भी यात्रियों के लिए एक आकर्षण की बात बन गई है।

बहुत समय तक चित्रकूट में रहने के बाद राम ने अत्रिमुनि से आज्ञा लेकर आगे के वनों की यात्रा की।

अत्रिऋषि का आश्रम पक्का बना हुआ है। परन्तु यहां यात्रियों के ठहरने का कोई प्रबन्ध नहीं है। जो महात्मा यहां रहते हैं, उन्होंने अपने एकान्तवास के लिए ही इसे अपना निवास-स्थान बना रक्खा है। हमें बताया गया कि उनके पास कभी-कभी साधु-महात्मा सत्संग करने के लिए आ जाते हैं। जो यात्री अत्रिमुनि या सती अनसूया के नाम पर आश्रम देखने जाते हैं, वे कुछ देर ठहरकर वापस लौट जाते हैं। बीहड़ जंगल होने के कारण यहां रहने की इच्छा भी नहीं होती।

अत्रिमुनि के आश्रम के पास की पहाड़ियों पर तरह-तरह की जड़ी-बूटियां मिलती हैं। आयुर्वेद की चिकित्सा करनेवाले वैद्य अपनी आवश्यकता की बहुत-सी औषधियां मंगाते रहते हैं। जड़ी-बूटियों के इकट्ठा

करने का काम आसान नहीं। उनको जाननेवाले ही ऊंची-ऊंची चोटियों से इकट्ठा करके लाते हैं। यहां की बहुत-सी जड़ी-बूटियां दूसरी जगहों में मुश्किल से मिल सकती हैं।

आश्रम के पास शेर-चीते जैसे जंगली जानवर भी पाये जाते हैं। गर्मी के मौसम में ये नदी के किनारे आ जाते हैं। आश्रम के महात्माओं ने इनको कई बार जल पीते हुए देखा है।

अत्रिमुनि के आश्रम से छः-सात मील की दूरी पर गुप्त गोदावरी का एक स्थान है। इसे देखने के लिए बहुत कम यात्री जाते हैं।

गुप्त गोदावरी जाने के लिए एक गुफा में घुसना पड़ता है। इसका एक दरवाज़ा बना हुआ है। मशाल या किसी दूसरी तरह की रोशनी के सहारे ही अन्दर जाना होता है। अन्दर जाने पर दो चट्टानों के बीच में पानी का एक झरना मिलता है। इसे ही गुप्त गोदावरी कहते हैं। झरने का जल साफ और मीठा है। यह जल एक कुण्ड में इकट्ठा होता रहता है। यात्री इसमें स्नान करके गोदावरी-स्नान का पुण्य कमाते हैं।

इस गुफा के पास एक दूसरी गुफा है। इसमें तीन कुण्ड हैं, जो राम-कुण्ड, लक्ष्मण-कुण्ड और हनुमान-कुण्ड

के नाम से प्रसिद्ध हैं। पण्डा लोग इनका अलग-अलग माहात्म्य बताते हैं।

गुप्त गोदावरी के पास पण्डों ने बहुत-से तीर्थों की कल्पना की है। यहां ऋषभ-तीर्थ, बदरिकाश्रम, तामरा तीर्थ और पुष्करिणी तीर्थ बताये जाते हैं।

हम बता चुके हैं चित्रकूट के साथ भरत का सम्बन्ध जुड़ा है। भरत यहां अपने भाई राम को अयोध्या लौटाने लिए के आये थे। भरत अपने साथ सभी तीर्थों का जल लाये थे। जिस समय भगवान राम को राजतिलक किया जाने को था तब यह जल आया था। राजतिलक न होने के कारण जल यों ही रक्खा था। उस जल को भरत अपने साथ चित्रकूट ले आये थे।

अत्रिऋषि की आज्ञा से भरतजी ने इस जल को एक कुएं में गिराया था, तब से यह कुआं भरत-कूप नाम से प्रसिद्ध होगया। पण्डे लोग इस कुएं के जल को भारत के सारे तीर्थों के जल के समान बताते हैं।

सीतापुर बस्ती से भरत-कूप लगभग पांच मील दूर है। भरतकूप सेण्ट्रल रेलवे पर एक छोटा-सा रेलवे-स्टेशन भी है। यहां से भरतकूप डेढ़ मील दूर है। यात्री मुख्य रूप से चित्रकूट की यात्रा करने पर ही यहां आते हैं।

सीतापुर और भरतकूप के बीच राम-शैया नाम का एक स्थान है। यहां एक शिला है। इसपर लेटने से कमर के निशान बन गये हैं। कहा जाता है कि राम और सीता ने यहां विश्राम किया था। उनकी याद में इस शिला-शैया की पूजा की जाती है।

भरतकूप के पास एक मन्दिर है, जिसमें राम और भरत की मूर्तियों के दर्शन होते हैं। यात्रियों के विश्राम के लिए यहां एक बरामदा बना दिया गया है।

पयस्विनी नदी के घाटों की तरफ मंदिर और

पक्के मकानों का दृश्य बड़ा ही सुहावना लगता है।

घाटों में सबसे अधिक भीड़ हमें राम-घाट पर दिखाई दी। राम की याद में बने घाट पर यात्री स्नान करने का पुण्य मानते हैं। इस घाट पर स्नान करते समय राम का स्मरण होता है। घाटों पर घूमते समय भी बारबार राम की याद आती है।

यहां घाटों की ओर बनी दूकानों पर खूब भीड़ रहती है। इनपर उन चीजों की बिक्री अधिक होती है, जो प्रसाद के काम में आती हैं। भांति-भांति की रंग-बिरंगी मालाएं, चन्दन, खिलौने, देवताओं की मूर्तियां और चित्र बहुतायत से बिकते हैं। घाटों पर धार्मिक पुस्तकें भी बिकती हैं।

मेले के दिनों में जब बहुत भीड़ हो जाती है और धर्मशालाएं भर जाती हैं, तब हजारों यात्री घाटों पर विश्राम करते हैं। घाट पक्के बने हैं। यात्री कपड़ा बिछाकर रात को आराम से यहां सो जाते हैं।

: ३ :

मेले और पर्व

जिस तरह उत्तरी भारत में गंगा के किनारे बसे तीर्थ-स्थानों में पूर्णिमा को गंगा-स्नान करना पुण्य और शुभ माना जाता है, उसी तरह यहां मन्दाकिनी

के किनारे अमावस्या के दिन स्नान करना शुभ समझा जाता है। कुछ महीनों में तो अमावस्या के दिन खूब मेला लगता है। हजारों यात्री स्नान के लिए आते हैं।

रामनवमी के अवसर पर यहां एक बड़ा मेला लगता है। मेला दो दिन तक रहता है। खूब धूम-धाम रहती है। दूर-दूर से हजारों यात्री आते हैं। घाटों पर भीड़ हो जाती है। रात के समय राम और सीताजी के सम्बन्ध में ग्रामीण महिलाएं भक्ति-भरे भजन और गीत गाती हैं।

चित्रकूट की यात्रा का सबसे अच्छा मौसम दिवाली के बाद का है। उस समय गर्मी नहीं होती। वर्षा ऋतु भी समाप्त हो जाती है। उन दिनों ठंड भी अधिक नहीं होती। घूमने-फिरने में आनन्द आता है। मन्दाकिनी का जल भी साफ़ हो जाता है।

इन दिनों खाने-पीने का आनन्द रहता है। गर्मी में कभी-कभी यात्रियों को अपच रोग हो जाता है। वर्षा के दिनों में यात्रा करने में कठिनाई होती है। इसलिए जाड़े के प्रारम्भ में ही यात्री अच्छी तरह से आसपास के स्थानों को देख सकते हैं।

लंका-विजय के बाद जब राम अयोध्या लौटे थे, तब उन्होंने अपना विमान चित्रकूट में रोका था। दंडक

वन में राम अगस्त्य मुनि आदि से भेंट करके चित्रकूट आये। इस सम्बन्ध में तुलसीदास लिखते हैं :

सकल रिसिन्ह सन पाइ असीसा,
चित्रकूट आये जगदीसा॥
तहं करि मुनिन्ह करे संतोसा,
चला बिमानु तहां ते चोखा॥

दण्डक वन के सब ऋषियों और मुनियों का आशीर्वाद पाकर रामचन्द्र चित्रकूट आये। यहां उन्होंने अपना विमान ठहराया। मुनियों से भेंट की। इसके बाद यहां से उनका विमान तेजी के साथ आगे चला।

चित्रकूट की यात्रा देश-भर के नर-नारियों के सामाजिक मिलन की एक सुन्दर और भावपूर्ण झांकी देती है। देश-भर के यात्री यहां आते हैं।

चित्रकूट राम के प्रेम और भक्ति का स्मरण करानेवाला एक प्राचीन तीर्थ है। यहां आनेवाला यात्री राम के प्रेम में तो डुबकी लगाता ही है, यहां के दृश्यों को देखकर पुलकित भी होउठता है।

पुष्कर

: १ :

सूरज उगने से पहले ही हम मोटर में बैठकर पुष्कर के लिए चल पड़े। अजमेर से यह तीर्थ लगभग ७ मील दक्षिण-पश्चिम में है। रास्ता साफ था। मोटर पक्की सड़क पर दौड़ती रही, हम खिड़की के बाहर प्रकृति की हरियाली देखते रहे, और देखते-ही-देखते पुष्कर आ गया।

हम चार जने थे। सामान एक सराय में रखकर बाहर निकल पड़े। पुष्कर आने पर यात्रियों का ध्यान सबसे पहले यहां के लम्बे-चौड़े सरोवर की ओर जाता है। हमने पहले से ही इस सरोवर की महिमा सुन रक्खी थी, इसलिए स्नान करने की इच्छा से घाट पर जा पहुंचे। जल्दी-जल्दी हमने कपड़े उतारे और पानी में कूद पड़े। एक साथी, जो अबतक सीढ़ियों पर ही खड़े थे, चिल्लाकर बोले, "अरे...रे...क्या करते हो! पता नहीं, इस सरोवर में घड़ियाल बहुत हैं; कहीं एकाध को खींचकर ले गये तो...।"

वे अपना वाक्य पूरा करें कि तबतक हम किनारे

पर आ गये। सचमुच हम यह भूल गये थे कि पुष्कर में घड़ियाल बहुत हैं। वैसे तो यह बात हमें अजमेर में ही एक साहब ने बता दी थी, लेकिन पता नहीं, कैसे इस समय दिमाग से उतर गई।

हम लोग भीगे बदन, सीढ़ियों पर खड़े-खड़े, पानी की सतह से टकराकर आती हुई ठण्डी हवा के मारे दांत बजा रहे थे। सूरज पहाड़ी के पीछे झांकने लगा था। पुजारी लोग भी स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर वापस लौट रहे थे। हमें इस दशा में खड़ा देखकर एक ने पूछा, "क्या बात है? सर्दी में इस तरह क्यों खड़े हैं?"

हमने उन्हें अपनी परेशानी बताई तो वे हँस पड़े। बोले, "आप शायद पहली बार आये हैं। घड़ियाल यहां थे अवश्य, लेकिन अब एक भी नहीं है। सब निकाल दिये गए हैं। आप निश्चित होकर नहाइये।"

हम सब फिर से पानी में कूद पड़े। इस बार हमारे साथ वे साथी भी थे, जो पिछली बार किनारे पर ही रह गये थे।

कहावत है कि "भारत का घर-घर तीर्थ है।" पता नहीं, इस बात में कितनी सचाई है, लेकिन हमारे विचार में यह कहावत इस तरह होनी चाहिए—"भारत तीर्थों का घर है।" अर्थात् यहां कदम-कदम पर तीर्थ

मिलते हैं। इन तीर्थों में चार प्रमुख माने जाते हैं। वे भारत की चार दिशाओं में हैं—पूर्व में द्वारिका, पश्चिम में जगन्नाथपुरी, उत्तर में बदरीनाथ और दक्षिण में रामेश्वर। ये चारों तीर्थ चार धाम कहलाते हैं। भक्त लोग बड़ी श्रद्धा से इनकी यात्रा करने जाते हैं। बीच-बीच में जो तीर्थ मिलते हैं, उनका दर्शन भी वे करते जाते हैं। लेकिन कहा जाता है कि यदि कोई यात्री सब तीर्थों के दर्शन कर आये और पुष्कर को छोड़ दे तो उसका सारा पुण्य व्यर्थ चला जाता है, क्योंकि जिस प्रकार प्रयाग तीर्थों का राजा है, उसी प्रकार पुष्कर तीर्थों का गुरु माना जाता है। इसलिए सब तीर्थों में पुष्कर का अपना महत्व है।

पुष्कर की शोभा यों बहुत-सी चीजों से है, लेकिन सबसे पहले लोगों की निगाह सरोवर पर ही पड़ती है। इसमें स्नान करने की भी बड़ी महिमा है। सैकड़ों यात्री यहां हर घड़ी स्नान करते हुए देखे जा सकते हैं। इसके किनारे पर पक्के घाट बने हुए हैं, जिससे यात्रियों को बड़ी सुविधा होती है। इन घाटों में से प्रमुख हैं: कपालमोचन घाट, यज्ञघाट, बदरीघाट, रामघाट, गोघाट, ब्रह्मघाट तथा कोटितीर्थ घाट। इन सभी घाटों की अलग-अलग विशेषताएं हैं, लेकिन क्योंकि पुष्कर में ब्रह्मा का विशेष महत्व है, इसलिए भक्तजन ब्रह्म

घाट पर नहाने में ही अधिक आनन्द मानते हैं। ये सभी घाट खुले हुए हैं, लेकिन एक स्थान पर स्त्रियों के
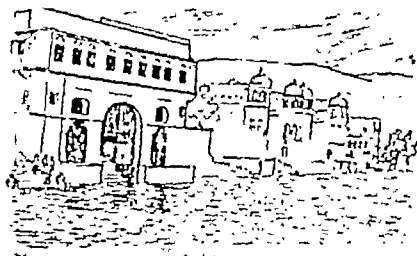
पुष्कर के घाट

नहाने का भी विशेष प्रबन्ध है। कमरेनुमा बने हुए उस घाट में पानी अन्दर तक गया है, जहां केवल स्त्रियां ही स्नान करती हैं। पुरुषों का इस ओर आना मना है।

स्नान के बाद हम मन्दिरों के दर्शन करने चल दिये। घाटों की छतरियों के नीचे होते हुए हम बाहर आये तो देखा, सपरंस की एक दुकान पर एक हलवाई गरमागरम कचौरियां उतार रहा है। यहां रुककर हमने जलपान किया। उसके बाद थोड़ी ही दूर गये

होंगे कि पीछे से आवाज आई—

"बाबूजी, गाइड ?"

हमने मुड़कर देखा तो हैरत में पड़ गये। एक लम्बी चोटीधारी पंडितजी हमारे सामने खड़े थे। शरीर पर कपड़ों के नाम घुटनों तक केवल गाढ़े की धोती, कन्धे पर अंगोछा और जनेऊ, पांव नंगे।

आखिर हमने उनसे तय किया और साथ लेकर चल पड़े। रास्ते में उन्होंने हमें पुष्कर की कथा सुनानी शुरू की—

पुराने जमाने में देवताओं को राक्षस बहुत तंग किया करते थे। न उन्हें यज्ञ करने देते थे, न पूजा-पाठ। देवता बहुत परेशान थे, लेकिन राक्षसों से बचने का कोई रास्ता नहीं सूझता था। ऐसे में ब्रह्मा की सृष्टि के कल्याण के लिए एक महायज्ञ करने की जरूरत अनुभव की गई। इस यज्ञ का सारा काम ब्रह्मा के सुपुर्द कर दिया गया। उन्होंने मृत्युलोक में एक सुन्दर वन ढूंढ़ा और वहां यज्ञ करने का स्थान नियत किया। देवताओं को भी ब्रह्मा की पसंद की हुई जगह अच्छी लगी। बड़े जोर-शोर से यज्ञ की तैयारियां होने लगीं। राक्षस लोग विघ्न न डालें, इसलिए ब्रह्मा ने चारों ओर ऊंची-ऊंची पहाड़ियां बना दीं। दक्षिण की ओर जो पहाड़ी आज भी दिखाई देती है, इसका नाम रत्न-

गिरी है, उत्तर की ओर बनाये गये पहाड़ को नीलगिरी कहते हैं, पश्चिम की ओर का पहाड़ सोना-चूड़ा पर्वत कहलाता है, पूर्व की तरफ के पहाड़ का नाम सर्पगिरी है। कुछ लोग इसे नाग-पहाड़ भी कहते हैं। इन पहाड़ियों पर पहरेदार के रूप में देवताओं को नियुक्त किया गया, जिससे यज्ञ के समय विघ्न पड़ने का खतरा न रहे। एक पहाड़ी पर स्वयं कृष्ण पहरेदार बने। आने-जाने के रास्ते में महादेव के नन्दी को खड़ा किया गया। अब यज्ञ शुरू करने का समय आया। ब्रह्मा इस यज्ञ के प्रधान होता थे, उन्हें ही मुख्य आहुति देनी थी, लेकिन जब वे आसन पर बैठे तो उनकी पत्नी सावित्री कहीं आस-पास दिखाई नहीं दीं। ब्रह्मा बड़े घबराये कि अर्धांगिनि के बिना यज्ञ कैसे करें। काफी खोजबीन की गई, पर सावित्री का पता न चला। शुभ मुहूर्त बीता जा रहा था, इसलिए ब्रह्मा ने रास्ते में जाती हुई एक गूजरी लड़की को पकड़कर अपने पास बिठा लिया और यज्ञ आरंभ किया। इसी समय सावित्री अपनी सखियों, लक्ष्मी और पार्वती, के साथ वहां आईं। जब उन्होंने देखा कि उनके आसन पर ब्रह्मा ने एक गूजरी को बिठा रक्खा है, तो वह क्रोध से भभक उठीं। असल में सावित्री के ठीक समय पर वहां न आ पाने का कारण यह था कि वह रूठी हुई पार्वती और लक्ष्मी को मनाने

चली गई थीं, जिन्हें देवता निमन्त्रण देना भूल गये थे। सावित्री को देवताओं की यह भूल मालूम हुई तो यज्ञ के अनिष्ट की आशंका से डरकर वह उन्हें मनाने चली गई थीं। लौटकर जब उन्होंने अपने स्थान पर दूसरी स्त्री को बैठे पाया तो ब्रह्मा को शाप दिया, "जाओ, तुम्हारी पूजा कहीं नहीं होगी।" इतना कह कर वह गुस्से में पैर पटकती हुई वहां से चली गईं और रत्नगिरी में समा गईं। जिस स्थान पर सावित्री धरती में समाई थीं, वहां उसी घड़ी एक झरना फूट पड़ा। यह झरना आज भी देखा जा सकता है। यह सावित्री-झरने के नाम से प्रसिद्ध है। इसी पहाड़ी पर झरने के पास ही सावित्री का मन्दिर भी है।

: २ :

रत्नगिरी की ओर जाते हुए हमने रास्ते में, पहाड़ियों की तलहटी में रेत और धूल का अम्बार देखा। पूछने पर इस रेत के बारे में भी एक कथा सुनने को मिली।

देवताओं का यज्ञ चल रहा था। सभी बारी-बारी से आहुति डालते थे और एक ओर हट जाते थे। शिवजी की बारी आई तो उन्होंने भी अग्नि में आहुति डाली। लेकिन वह अभी पूरी पूजा नहीं कर पाये थे कि बीच में ही उन्हें धतूरे की तलब हुई। धतूरा खाया तो नशे

इन सब बातों को अपने मार्गदर्शक से सुनते हुए हम रत्नगिरी की तरफ बढ़ रहे थे। दूर से ही झरने का मधुर संगीत सुनाई देने लगा। मार्गदर्शक चुप हो गया। शायद इतनी देर तक बोलते-बोलते वह थक गया था।

हम झरने के पास पहुंचे। पानी की मोटी धारा शोर मचाती हुई काफी ऊंचे से गिर रही थी। हमने थोड़ा-सा जल हाथमें लेकर पिया। बड़ा स्वादिष्ट, मीठा और निर्मल जल था। हमारे दो साथी एक छायादार पेड़ के नीचे बैठ गये। हमने भी उनका साथ दिया। चलते-चलते सब थक गये थे, इसलिए ठण्डी-ठण्डी हवा से बड़ा आनन्द मिला। वहीं झरने के पास बैठे-बैठे मार्ग-दर्शक ने बताया—

"यही वह स्थान है, जहां सावित्री धरती में समाई थी और यही वह झरना है, जो उनके अन्तर्धान होते ही फूट पड़ा था।"

थोड़ी देर तक रुककर मार्गदर्शक आगे बोला—

"आज से सैकड़ों वर्ष पहले मन्दोर में एक राजा राज्य करता था। उसका नाम था नाहरराय। उसके शरीर पर कोई ऐसा चर्म रोग हो गया था, जिसका इलाज बड़े-बड़े वैद्य-हकीम भी नहीं कर पाये थे। एक बार वह शिकार खेलता हुआ इसी ओर आ

निकला। गर्मी से परेशान था, इसलिए झरने के नीचे नहा लिया। नहाते ही उसका रोग दूर हो गया। वह बड़ा प्रसन्न हुआ। जाते समय इस स्थान की पहचान के लिए एक पेड़ पर अपनी पगड़ी लटका गया। थोड़े ही दिनों में वह बहुत-से लोगों को लेकर यहां आया और पुष्कर नामक सरोवर खुदवाया। सरोवर पर पक्के घाट भी बनाये।"

"लेकिन इस सरोवर का नाम 'पुष्कर' क्यों रक्खा गया?" हमारे एक साथी ने पूछा।

"इसकी भी एक कथा है।" मार्गदर्शक बोला, "एक बार ब्रह्मा के मन में विचार आया कि हम आदि देव हैं। हमने सृष्टि की रचना की है। इसलिए उस स्थान में जहां हम विष्णु की नाभि से कमल द्वारा उत्पन्न हुए हैं, एक तीर्थ की स्थापना करें। इस विचार के मन में आते ही ब्रह्मा यहां आये और एक हजार वर्ष तक इसी स्थान पर रहे। बाद में जब वह जाने लगे तो अपने हाथ का कमल यहीं छोड़ गये। इसी कारण इस तीर्थ का नाम 'पुष्कर' पड़ा।"

यह कहानी सुनाकर मार्ग-दर्शक बोला—

"यह भगवान की धरती है, साहब। यहां की महिमा क्या-क्या बताऊं आपको। यहां तो पेड़ों पर भी मिठाइयां लगती हैं।"

"क्या मतलब ?" हम चौंक पड़े।

"अचरज क्यों करते हैं! कहें तो अभी तोड़कर ले आऊं पेड़ से।"

हम बड़े चक्कर में पड़े कि अजीब आदमी से पाला पड़ा है।

हमने कहा—"भाई, यहां जंगल में..."

बात काटकर वह बोला, "जंगल नहीं, साहब, यह तीर्थ है तीर्थ। यहां तो कुदरत का हलवाई बैठा है, चाहे जितनी मिठाइयां खाइये। कोई रोक-टोक नहीं है।"

इतना कहकर मार्गदर्शक उठकर चल दिया और पहाड़ी के बगलवाले पेड़ों के झुरमुट में गायब हो गया। थोड़ी देर में लौटा। गमछे की पोटली में कुछ बांधकर लाया था। उसने पोटली हमारे सामने रक्खी तो हम उसे ऐसे देख रहे थे, मानों जादू का पिटारा हो। ज्योंही पोटली खुली, मीठी-मीठी भीनी-भीनी खुशबू नाक में तैर गई। हमारे सामने ताजे, पके, चमकीले अमरूदों का ढेर लगा था।

"ये हैं कुदरत की मिठाइयां। खाकर देखिये। इस कदर मीठी है कि आदमी की बनाई हुई मिठाई इनके सामने क्या टिकेगी ?" मार्गदर्शक बोला।

हमारी तबीयत खुश हो गई। सचमुच वे अमरूद

बड़े मीठे थे। हमने देखा, एक ही जैसे पेड़ों का जंगल-का-जंगल पहाड़ियों पर छाया हुआ था। उनकी ओर हाथ उठाकर हमें दिखाता हुआ मार्ग-दर्शक बोला—

"ये सब अमरूद के पेड़ हैं। पुष्कर का अमरूद मशहूर है। यहां की मिट्टी में भी मिठास है; वही मिठास इन अमरूदों में खाने को मिलता है। आजादी से पहले तो इस ओर किसीका ध्यान नहीं गया था, लेकिन जबसे हमारी अपनी सरकार बनी है, यहां अमरूदों की पैदावार बहुत बढ़ गई है। आजकल मौसम नहीं है। फिर भी देखो, कितने अच्छे अमरूद खाने को मिले हैं। मौसम के दिनों में तो चारों ओर फलों की ही बहार दिखाई देती है। पुष्कर का यह प्रसाद दूर-दूर तक जाता है।

: ३ :

थोड़ी देर बाद हम पहाड़ी पर स्थित सावित्री के मन्दिर में पहुंचे। यह मन्दिर है तो छोटा और काफी पुराना, फिर भी कला की छाप इसपर दीख पड़ती है। जिस समय हम वहां पहुंचे, चारों ओर शान्ति छाई हुई थी। पहाड़ी पर चढ़ने से जो थकान हो गई थी, वह आधी तो झरने के पास कुछ देर बैठने से उतर गई और बाकी यहां की ठण्डी-ठण्डी हवा में गायब हो

गई। रत्नगिरी काफी ऊंची पहाड़ी है। वहां से पुष्कर का बड़ा ही मोहक दृश्य देखने को मिला। एक ओर सूरज की किरणों से चमचमाता हुआ सरोवर ऐसा लग रहा था, मानो हम स्वर्ण-सागर को देख रहे हैं। दूसरी ओर हरे-भरे पेड़ों के झुरमुटों से घिरा पुष्कर गांव बड़ा भला लग रहा था। वहीं से सामने पूर्व दिशा की ओर बने नागपहाड़ पर एक टूटा किला देखकर हमने मार्गदर्शक से उसके बारे में पूछा, तो वह बोला—

"आप नीचे उतरिये। चलते-चलते इसकी कथा सुनाऊंगा।"

हमने पहाड़ी से नीचे उतरना शुरू किया। सूरज तेज होने लगा था, लेकिन आकाश में बादल घूम रहे थे, इसलिए गर्मी हमें अधिक परेशान नहीं कर रही थी। हम आगे चले तो मार्ग-दर्शक ने टूटे हुए दुर्ग की कहानी सुनानी शुरू की—

सैकड़ों वर्ष पहले नागपहाड़ नामक इस पर्वत पर एक युवक रहा करता था। उसका जन्म इसी पहाड़ पर हुआ था और वह बकरियां पालकर पेट भरता था, इसलिए उसका नाम 'अजपाल' पड़ गया। अजपाल बड़े धार्मिक विचारोंवाला और सेवाभावी नौजवान था। वह इस तीर्थ में रहनेवाले एक साधु

की पूजा करता और हर रोज अपनी बकरियों का दूध संन्यासी को पीने के लिए दिया करता। जब कई दिन बीत गये और अजपाल इसी तरह बिना किसी कामना के साधु की सेवा करता रहा तो प्रसन्न होकर संन्यासी ने उसे वरदान दिया कि वह एक दिन चक्रवर्ती राजा होगा।

वरदान मिलते ही अजपाल एक वीर और तेजस्वी पुरुष बन गया। उसे अपनी जन्म भूमि सर्पगिरी से बड़ा प्रेम था। इसलिए चक्रवर्ती सम्राट बनने के बाद भी उसने सर्पगिरी को नहीं छोड़ा और वहां बकरियां चराने का काम भी करता रहा। जब उसके मन्त्रियों ने कहा कि उसके लिए बड़े-बड़े महल या दुर्ग बना दिये जायं तो बोला—

"अगर दुर्ग बनाना ही है तो सर्पगिरी पर ही बनाओ नहीं तो कहीं नहीं।"

सर्पगिरी पर दुर्ग बनने लगा। हजारों कारीगर और राज काम पर जुट गये। लेकिन बड़े अचरज की बात थी कि दिन में जितना हिस्सा दुर्ग का बनता रात को उतना ही गिर पड़ता। इस तरह दुर्ग कभी पूरा नहीं हो पाया। आखिर हारकर अजपाल ने यह किला योंही छोड़ दिया और पहाड़ी के दूसरी ओर एक नगर बसाया जो आज अजमेर के नाम से जाना जाता है।

मार्गदर्शक ने यह बात बताई तो हमारे साथी ने पूछा—"अच्छा, तो क्या अजमेर को बसानेवाला यही अजपाल था।"

उत्तर मिला—"जी हां, इसी अजपाल के नाम पर इस शहर का नाम अजमेर पड़ा। यही अजपाल चौहान वंश का पहला वंशधर माना जाता है।"

सर्पगिरी को देखते हुए हम ब्रह्मा के मन्दिर की ओर चल दिये। पहाड़ी पर दुर्ग के खण्डहर अब बिलकुल बिखर गये हैं। सर्पगिरी की प्रसिद्धि के बारे में भी मार्ग-दर्शक ने एक कहानी सुनाई।

इस पहाड़ी पर बड़े-बड़े साधु-संन्यासियों ने अपने जीवन के सैकड़ों वर्ष बिताये हैं। विक्रमादित्य के भाई भर्तृहरि अपने समय के बहुत बड़े सन्त पुरुष हुए हैं। आज भी घर-घर में उनका नाम श्रद्धा से लिया जाता है। सिन्धु नदी के किनारे सिवयान का दुर्ग, अलवर की गुफा, आबू पहाड़ और काशी में बने हुए उनके योग-साधन के स्थान आज भी देखने को मिलते हैं। वैसे तो भर्तृहरि घूमते रहते थे, लेकिन उन्होंने अपने सैकड़ों वर्ष के जीवन का बहुत बड़ा भाग पुष्कर की सर्पगिरी पहाड़ पर एक गुफा में ही बिताया था। आज भी उस गुफा के बाहर एक शिला भर्तृहरि की कहानी कहती हुई पड़ी है। इसके अलावा सर्पगिरी के

साथ और भी कई संन्यासियों के नाम जुड़े हुए हैं, जिनमें से विश्वामित्र और अगस्त्य मुनि को सारा देश जानता है। अगस्त्य मुनि के नाम से प्रसिद्ध एक छोटा-सा झरना आज भी पहाड़ी पर देखा जा सकता है। लोग यहां के दर्शन करने आते हैं।

: ४ :

पुष्कर गांव एक छोटा-सा कस्बा है। यहां की आबादी मुश्किल से ७-८ हजार की होगी। इस गांव की सीमा के अन्दर जीव-हिंसा नहीं होती। पुष्कर सरोवर से एक नदी भी निकलती है, जो सरस्वती कहलाती है। यह नदी आगे चलकर साबरमती में मिल जाती है और लूनी के नाम से प्रसिद्ध होती है। इस सरोवर की तुलना कैलास के मानसरोवर से की जाती है। इसका घेरा सवा कोस का है। इसके चारों ओर सैकड़ों छोटे-बड़े मन्दिर और देवालय बने हुए हैं। आज से कोई डेढ़ सौ साल पहले जलाशय के पूर्वी भाग को छोड़कर बाकी हिस्सों में असंख्य मन्दिर और महल बने हुए थे, जिन्हें उस समय के बड़े-बड़े धनिकों और धर्म-प्रेमियों ने बनवाया था। इनमें जयपुर के महाराज मानसिंह, महाराज होल्कर की पटरानी अहिल्याबाई, भरतपुर के सेठ जौहरीमल तथा मारवाड़ अधिपति विजयसिंह के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके बनवाये हुए

मार्गदर्शक ... और मन्दिर बड़े सुन्दर थे। यहाँ बहुत-से
ने पूछा— ... मंदिरों के खण्डहर भी देखने को मिलते हैं,
यही ... जिनमें अप्पा-अप्पा सिन्धिया और उनके भाई शान्ताजी
के स्मारक मशहूर हैं।

प... पुष्कर तीन हैं। ज्येष्ठ पुष्कर, मध्यम पुष्कर, और लघु पुष्कर। ज्येष्ठ पुष्कर के देवता ब्रह्मा हैं, मध्यम के विष्णु और लघु के देवता रुद्र हैं। ज्येष्ठ पुष्कर में ही ब्रह्मा ने अपने यज्ञ की वेदिका का निर्माण किया था। कुछ लोग पुष्कर की परिक्रमा भी करते हैं। यह परिक्रमा ज्येष्ठ, मध्यम और लघु तीनों पुष्करों की अलग-अलग होती है। पहली परिक्रमा तीन कोस की, दूसरी पांच कोस की, तीसरी बारह कोस की और चौथी परिक्रमा चौबीस की है। परिक्रमा का मार्ग कुछ इस ढंग से बनाया गया है कि यात्रियों को रास्ते में कई मन्दिर, देवालय और महर्षियों के स्थान मिलते हैं, जहाँ लोग श्रद्धा से सिर नवाते चलते हैं। ज्येष्ठ पुष्कर से लगभग एक कोस की ही दूरी पर लघु और मध्यम पुष्कर हैं। उनके पास ही गया का एक प्रसिद्ध कुण्ड है जो 'शुद्धवापी' नाम से पुकारा जाता है। इस कुण्ड से पांच कोस के अन्तर पर ही सरस्वती, प्राची और नंदा नदियों का पवित्र संगम है। ग्रामीण लोग ज्येष्ठ पुष्कर को 'बूढ़ा पुष्कर' कहते हैं।

हिन्दु धर्म में पंचतीर्थों का बड़ा माहात्म्य है। पुष्कर भी इन पंच तीर्थों में से एक है। ये पंचतीर्थ इस प्रकार हैं—पुष्कर, कुरुक्षेत्र, गंगा, गया और प्रभास क्षेत्र। पुराणों में इन तीर्थों की बड़ी महिमा गाई गई है।

पुष्कर तीर्थ की दूर-दूर तक प्रसिद्धि का एक बड़ा कारण हर कार्तिक पूर्णिमा को लगनेवाला मेला है। इस मेले में भारी संख्या में लोग आते हैं। इस मेले में कई स्थानों के घोड़े, बैल, ऊंट आदि पाये जाते हैं, जिन्हें लोग खरीदते हैं। एक तरह से यह मेला राजस्थान प्रान्त का एक बहुत बड़ा पशुमेला माना जाता है। दूर-दूर से लोग पशु खरीदने के लिए आते हैं। मेले में पशुओं के जो कौतुकभरे खेल दिखाये जाते हैं, उनमें बैलों के करतब मशहूर हैं। बैलों की दौड़ बहुत-से लोगों का ध्यान आकर्षित करती है। यह मेला कार्तिक शुक्ल पक्ष की एकादशी से लेकर पूर्णिमा तक चलता है। इन पांच दिनों में हजारों यात्री पुष्कर सरोवर में स्नान करते हैं। स्नान का विशेष महत्व मेले के अन्तिम दिन अर्थात् कार्तिक पूर्णिमा को होता है। इस दिन लोग अपने पूर्वजों को पिण्ड-दान भी करते हैं। कहा जाता है कि कार्तिक पूर्णिमा को ब्रह्मघाट पर स्नान करने-वाले मनुष्य को सौ वर्ष तक अग्निहोत्र करने का फल

मिलता है। यह भी विश्वास किया जाता है कि यदि कोई आदमी कारण-वश पुष्कर नहीं पहुंच पाता, किन्तु स्वच्छ मन से, इस दिन पुष्कर का ध्यान करके स्नान करता है, तो उसको भी बड़ा लाभ पहुंचता है।

: ५ :

सरोवर का जल रोगनाशक है। इसमें स्नान करने से रोग दूर होते हैं। सुन्दरता तथा स्वास्थ्य बढ़ता है। इस बारे में यहां एक बड़ी ही रोचक कथा कही जाती है।

पुष्कर की पहाड़ियों में मुनि विश्वामित्र रहा करते थे, उन्होंने सैकड़ों वर्ष तक कठिन तप किया। वह महर्षिपद पाना चाहते थे। एक दिन स्वर्ग की अप्सरा मेनका इस रास्ते से गुजरी। वह चलते-चलते थक गई थी, इसलिए सरोवर देखकर उसके मन में स्नान करने की इच्छा हुई। उसने सरोवर में स्नान किया, जिससे उसका सौन्दर्य पहले से कई गुना अधिक बढ़ गया है। जब मेनका वहां नहा रही थी, उसी समय विश्वामित्र उधर आ निकले। वह एक रूपवती स्त्री को नहाते देखकर चकित से खड़े रह गये। इतना रूप उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। उन्होंने मेनका से कहा कि वह उनकी पत्नी बनना स्वीकार करे। मेनका उनकी कुटिया में रहने लगी।

वह रोज सरोवर में स्नान करती, जिसमें उसका सौन्दर्य अक्षय हो गया। विश्वामित्र मेनका के रूप-जाल में ऐसे फंसे कि दस वर्ष बीत गये। जब उन्हें याद आया कि वह एक तपस्वी हैं और इस समय एक मामूली स्त्री के प्रेम में जकड़े हुए हैं तो उन्हें बड़ी ग्लानि हुई।

इधर मेनका के एक पुत्री हुई, जिसे वह लोक-लाज के भय से एक पेड़ के नीचे छोड़ गई। यही पुत्री आगे चलकर कण्व ऋषि के आश्रम में पली और शकुन्तला के नाम से प्रसिद्ध हुई। विश्वामित्र की अखंड तपस्या से इन्द्र का सिंहासन डोल उठा। वह डर गया कि यदि विश्वामित्र की तपस्या भंग नहीं की गई तो उसकी पदवी छिन जायगी। इसलिए उसने रंभा नाम की एक अप्सरा को विश्वामित्र का तप भंग करने के लिए भेजा। पहले तो रंभा डरी, क्योंकि वह विश्वामित्र के क्रोध से परिचित थी; लेकिन जब इन्द्र ने उसे पुष्कर सरोवर द्वारा दिये गए रूप की महिमा बताई तो वह राजी हो गई, और प्रसन्नता से पुष्कर पहुंची। उसने सरोवर में स्नान किया और विश्वामित्र के सामने पहुंची। ऊपर पेड़ पर स्वयं इन्द्र और कामदेव, कोयल का रूप धारण करके बैठे थे। उन्होंने पंचम स्वर में कुहुकना शुरू किया। रंभा ने नृत्य शुरू किया। पायल

यह मन्दिर पुष्कर के सभी मन्दिरों से अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह ब्रह्मा का ही तीर्थ है। वैसे भी हमारे देश में ब्रह्मा के मन्दिर कम हैं। इस कारण इसकी और भी मानता है।

इस मन्दिर को महाराज सिन्धिया के मन्त्री गोकुलपाल ने बनवाया था। पहले इसके फर्श और सीढ़ियों पर चांदी के रुपये जड़े हुए थे। अब रुपये तो नहीं बचे, पर उनके निशान अब भी हैं। कहा जाता है कि वैसे तो मन्दिर के लिए सारा सामान देशी ही था और मजदूरों तथा राजों को मजदूरी भी बहुत कम दी गई थी, फिर भी इसके बनवाने में एक लाख तीस हजार रुपया खर्च हुआ था।

मन्दिर में एक सुन्दर चांदी की चौकी पर ब्रह्मा की चतुर्मुखी मूर्ति स्थापित है। इसके बाईं ओर गायत्री की तथा दाहिनी ओर सावित्री की मूर्तियां हैं। ब्रह्मा की चौकी पर गुम्बदनुमा छत्र-सा बना हुआ है, जिसके किनारों पर मूल्यवान झालरें लटक रही हैं।

सुबह-शाम जब यहां आरती होती है, तो छत से लटके हुए बीसियों घन्टों की आवाज दूर-दूर तक सुनाई देती है। लेकिन इस आवाज के विषय में भी यहां ऐसी कहानी प्रचलित है कि सावित्री ब्रह्मा से रूठकर रत्नगिरी पर्वत पर जा बैठी हैं, इसलिए ब्रह्म

सबसे पहले हम ब्रह्मा के विशाल मन्दिर में पहुंचे। यह मन्दिर पुराने ढंग का बना हुआ है। ऊपर बड़ा-

ब्रह्मा का मन्दिर
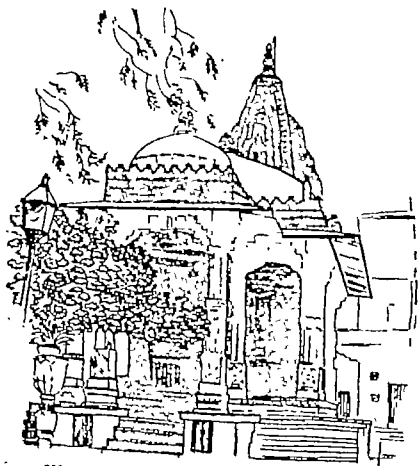
सा गुम्बद है। अन्दर से भी यह गुम्बद काफी ऊंचा और गोल दिखाई देता है। छत से कई घंटे-घड़ियाल लटके हुए हैं, जिन्हें यात्री लोग बार-बार बजाते हैं।

यह मन्दिर पुष्कर के सभी मन्दिरों से अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह ब्रह्मा का ही तीर्थ है। वैसे भी हमारे देश में ब्रह्मा के मन्दिर कम हैं। इस कारण इसकी और भी मानता है।

इस मन्दिर को महाराज सिन्धिया के मन्त्री गोकुलपाल ने बनवाया था। पहले इसके फर्श और सीढ़ियों पर चांदी के रुपये जड़े हुए थे। अब रुपये तो नहीं बचे, पर उनके निशान अब भी हैं। कहा जाता है कि वैसे तो मन्दिर के लिए सारा सामान देशी ही था और मजदूरों तथा राजों को मजदूरी भी बहुत कम दी गई थी, फिर भी इसके बनवाने में एक लाख तीस हजार रुपया खर्च हुआ था।

मन्दिर में एक सुन्दर चांदी की चौकी पर ब्रह्मा की चतुर्मुखी मूर्ति स्थापित है। इसके बाईं ओर गायत्री की तथा दाहिनी ओर सावित्री की मूर्तियां हैं। ब्रह्मा की चौकी पर गुम्बदनुमा छत्र-सा बना हुआ है, जिसके किनारों पर मूल्यवान झालरें लटक रही हैं।

सुबह-शाम जब यहां आरती होती है, तो छत से लटके हुए बीसियों घन्टों की आवाज दूर-दूर तक सुनाई देती है। लेकिन इस आवाज के विषय में भी यहां ऐसी कहानी प्रचलित है कि सावित्री ब्रह्मा से रूठकर रत्नगिरी पर्वत पर जा बैठी हैं, इसलिए ब्रह्म

के मन्दिर में होनेवाली शंख और नगाड़े-ताशे की ध्वनि ऊपर पहुंच जाती है; लेकिन सावित्री के मन्दिर
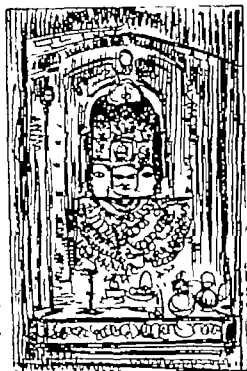
ब्रह्मा की चतुर्मुखी मूर्ति

में होनेवाली आरती की आवाज नीचे नहीं आती। हालांकि ब्रह्मा का मन्दिर रत्नगिरी की तलहटी में ही है, फिर भी ऊपर की आवाज़ नीचे सुनाई नहीं देती, जबकि दूर-दूर के स्थानों में सावित्री के मन्दिर की आरती की आवाज सुनी जा सकती है। मन्दिर के बाहर एक घना पेड़ है, जिसके नीचे साधु-संन्यासी

बैठे रहते हैं। हमने और भी मन्दिर देखे।

श्री रंगजी का मंदिर—यह मन्दिर दक्षिण भारतीय कला का सुन्दर नमूना है। बारीक नक्काशी और खुदाई का काम यहां बड़ा कलापूर्ण है। मन्दिर
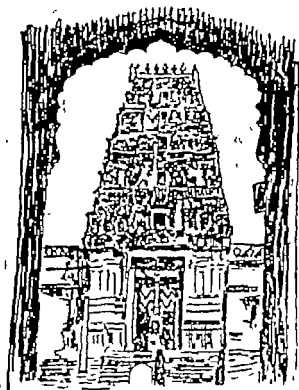
रंगजी का मन्दिर

का द्वार बड़ा लुभावना लगता है। मन्दिर बहुत पुराना नहीं है, इसलिए विशेष रूप से सुन्दर दीख पड़ता है। है। आकार-प्रकार में भी यह मन्दिर यहां के सब

मन्दिरों से बड़ा है। कहते हैं, इसका निर्माण एक ऐसे व्यक्ति ने अपनी पत्नी के कहने पर करवाया है, जिसे कहीं से गढ़ा हुआ धन मिला था। मन्दिर में रंगनाथ-जी की सुन्दर मूर्ति है। यहां भक्तजनों की हरदम भीड़ लगी रहती है। सुबह-शाम प्रसाद के रूप में यहां मालपुए बांटे जाते हैं।

नृसिंह का मन्दिर—प्रह्लाद की कथा से सभी भारतीय परिचित हैं। उसके पिता हिरण्यकश्यप का संहार करने के लिए ही भगवान् ने नृसिंह अवतार लिया था। हिरण्यकश्यप को यह वरदान मिला हुआ था कि वह न मनुष्य से मरेगा, न पशु से। न रात में, न दिन में, न घर के अन्दर, न घर के बाहर; न धरती पर, न आकाश में और न किसी अस्त्र-शस्त्र से। इसी वरदान का पालन करने के लिए नृसिंह भगवान ने उसे दरवाजे की चौखट पर बैठकर अपनी गोद में रक्खा और संध्या के समय अपने बड़े-बड़े नाखूनों से पेट चीरकर उसका वध किया। मन्दिर में स्थित भव्य मूर्ति का आधा शरीर मनुष्य का है, आधा सिंह का।

वाराह का मन्दिर—जब ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना के लिए पृथ्वी का निर्माण किया तो हिरण्याक्ष नामक एक राक्षस, पृथ्वी को चुराकर पाताल-लोक में ले गया। ब्रह्मा बड़े घबराये कि सृष्टि की रचना किस

पर करें। ये दौड़े हुए क्षीर-सागर में विष्णु के पास गये और अपनी परेशानी उनसे कही। विष्णु भगवान ने फौरन वाराह अवतार लिया और पाताल में जाकर उस राक्षस से युद्ध किया फिर आगे निकले हुए अपने दाँतों पर पृथ्वी को उठाकर ले आये। इस प्रकार पृथ्वी का उद्धार हुआ। इन्हीं वाराह भगवान का मंदिर जोधपुर के एक निवासी ने बनवाया है। कहा जाता है कि इसी स्थान पर पहले, वाराह का एक विशाल मन्दिर बना हुआ था, जिसमें वाराह की सोने की मूर्ति थी। किन्तु वह मन्दिर जहाँगीर के शासन-काल में तुड़वा दिया गया।

आत्मेश्वर महादेव का मन्दिर—इस मन्दिर में महादेव की मूर्ति विराजमान है। अन्दर जाने के लिए बड़ा संकरा द्वार है; जो गुफा के जैसा लगता है, आदमियों को अन्दर जाने में बड़ी असुविधा रहती है, फिर भी दर्शनार्थी भारी संख्या में वहाँ जाते हैं और घन्टों भगवत् आराधना करते हैं। इस मन्दिर को 'भगवत् कपालेश्वर के मन्दिर' के नाम से भी पुकारा जाता है।

सब मंदिरों को देखते-देखते साँझ हो गई। मार्ग-दर्शक को विदा कर अपने ठहरने के स्थान पर वापस आये। दूसरे दिन प्रातःकाल हम पुष्कर से लौट पड़े।

पंढरपुर

: १ :

अगर हमें यह देखना हो कि हमारे देश में जात-पांत, रहन-सहन, बोल-चाल आदि के भेद होते हुए भी हम कैसे एकता में गुंथे हुए हैं तो हम अपने तीर्थों पर निगाह डालें। वहां जात-पांत, भाषा-बोली आदि भेद टिक नहीं सकते और किसी भी तीर्थ पर आकर हम देख सकते हैं कि हम सब भारतीय एक हैं।

महाराष्ट्र का पंढरपुर भी इसी तरह का एक तीर्थ है। वहांपर महाराष्ट्र के ब्राह्मणों से लेकर अछूतों तक सभी एक साल में कम-से-कम दो बार जमा हो जाते हैं, लेकिन साथ ही कर्नाटक और आंध्र के भी हजारों स्त्री-पुरुष हर साल पंढरपुर के विठ्ठल के दर्शनों के लिए आते हैं। जिस तरह मराठी में ज्ञानेश्वर, तुकाराम, नामदेव, चोखामेला आदि सवर्ण तथा अछूत संतों ने विठोबा की स्तुति में पद लिखे हैं, उसी तरह चौंडरस, पुरंदरदास, कनकदास आदि कर्नाटक के संतों ने भी कन्नड़ भाषा में विठ्ठल के गुण गाये हैं। जब लोग

पर करें। वे दौड़े हुए क्षीर-सागर में विष्णु के पास गये और अपनी परेशानी उनसे कही। विष्णु भगवान ने फौरन वाराह अवतार लिया और पाताल में जाकर उस राक्षस से युद्ध किया फिर आगे निकले हुए अपने दाँतों पर पृथ्वी को उठाकर ले आये। इस प्रकार पृथ्वी का उद्धार हुआ। इन्हीं वाराह भगवान का मंदिर जोधपुर के एक निवासी ने बनवाया है। कहा जाता है कि इसी स्थान पर पहले, वाराह का एक विशाल मन्दिर बना हुआ था, जिसमें वाराह की सोने की मूर्ति थी। किन्तु वह मन्दिर जहाँगीर के शासन-काल में तुड़वा दिया गया।

आत्मेश्वर महादेव का मन्दिर—इस मन्दिर में महादेव की मूर्ति विराजमान है। अन्दर आने के लिए बड़ा संकरा द्वार है, जो गुफा के जैसा लगता है, आदमियों को अन्दर जाने में बड़ी असुविधा रहती है, फिर भी दर्शनार्थी भारी संख्या में वहाँ जाते हैं और घन्टों भगवत् आराधना करते हैं। इस मन्दिर को 'भगवत् कपालेश्वर' के मन्दिर' के नाम से भी पुकारा जाता है।

सब मंदिरों को देखते-देखते साँझ हो गई। मार्ग-दर्शक को विदा कर अपने ठहरने के स्थान पर वापस आये। दूसरे दिन प्रातःकाल हम पुष्कर से लौट पड़े।

पंढरपुर

: १ :

अगर हमें यह देखना हो कि हमारे देश में जात-पांत, रहन-सहन, बोल-चाल आदि के भेद होते हुए भी हम कैसे एकता में गुंथे हुए हैं तो हम अपने तीर्थों पर निगाह डालें। वहां जात-पांत, भाषा-बोली आदि भेद टिक नहीं सकते और किसी भी तीर्थ पर जाकर हम देख सकते हैं कि हम सब भारतीय एक हैं।

महाराष्ट्र का पंढरपुर भी इसी तरह का एक तीर्थ है। वहांपर महाराष्ट्र के ब्राह्मणों से लेकर अछूतों तक सभी एक साल में कम-से-कम दो बार जमा हो जाते हैं, लेकिन साथ ही कर्नाटक और आंध्र के भी हजारों स्त्री-पुरुष हर साल पंढरपुर के विठ्ठल के दर्शनों के लिए आते हैं। जिस तरह मराठी में ज्ञानेश्वर, तुकाराम, नामदेव, चोखामेला आदि सवर्ण तथा अछूत संतों ने विठोबा की स्तुति में पद लिखे हैं, उसी तरह चौंडरस, पुरंदरदास, कनकदास आदि कर्नाटक के संतों ने भी कन्नड़ भाषा में विठ्ठल के गुण गाये हैं। जब लोग

काशी, रामेश्वर, द्वारका, जगन्नाथपुरी आदि बड़े तीर्थों की यात्रा नहीं कर सकते तो अपने पास के तीर्थ की यात्रा करते हैं और इस तरह सब तीर्थों को बड़े तीर्थों का महत्व मिल जाता है। यही हाल पंढरपुर का है।

पंढरपुर जाने के दो रास्ते हैं। एक उत्तर से, दूसरा दक्षिण से। उत्तर में पूना-शोलापुर के रास्ते पर पूना से ११५ मील पर और शोलापुर से ४९ मील पर कुर्डूवाडी नाम का मध्य रेलवे का जंकशन है। वहां से बार्शीलाइट रेलवे नाम की छोटी लाइन पर ३३ मील की दूरी पर पंढरपुर स्टेशन है। दक्षिण में दक्षिण रेलवे के मिरज जंकशन से पंढरपुर ८५ मील पड़ता है। वहां से भी बार्शीलाइट रेलवे की छोटी लाइन पंढरपुर होती हुई लातुर तक जाती है। यह लाइन बहुत ही छोटी है, इसलिए बड़े-बड़े मेलों के मौकों पर इसमें माल ढोनेवाले डिब्बे लगा दिये जाते हैं और उनमें आदमियों को सफर करना पड़ता है।

यात्रियों के ठहरने आदि का बहुत अच्छा प्रबंध यहांपर है। अनेक मंदिर, मठ और धर्मशालाएं हैं। पंडों का काम करनेवाले कई ब्राह्मण-परिवार हैं, जिन्हें बडवे, उत्पात, हरदास, पुजारी आदि नामों से पुकारा

जाता है।

यहांपर भीमा नदी चांद के आकार में बहती है, इसलिए उसे चंद्रभागा कहा जाता है। पंढरपुर इसी चंद्रभागा के किनारे बसा हुआ है। दूर से इसका दृश्य बड़ा ही सुंदर दिखाई देता है। यहां की जमीन बड़ी ही उपजाऊ है और जिस साल अच्छी बारिश होती है, उस साल ज्वार या बाजरे की बड़ी अच्छी फसल होती है। यहां के बैल मशहूर हैं।

काशी की तरह पंढरपुर की आबादी भी बहुत घनी है और बड़ी संकरी गलियों का जाल सब तरफ बिछा हुआ है। इसलिए बरसात के दिनों में यानी आषाढ़ की एकादशी के मौके पर लोगों को बड़ी तकलीफ होती है, लेकिन कार्तिकी एकादशी को यहां की नदी के पाट में खाली जगह काफी हो जाती है।

महाराष्ट्र का हर निवासी, भले ही काशी की यात्रा न करे, रामेश्वर तक न भी पहुंच पाये, मगर पंढरपुर जरूर जाता है। कम-से-कम ऐसी कोशिश बराबर करता रहता है कि जीवन में एक बार तो पंढरपुर के विठोबा के दर्शन कर ले। हजारों लोग पैदल भी यात्रा करते हैं और श्री विठ्ठल के दर्शन करके अपनेको धन्य मानते हैं। लड़ाई के मैदान में बहादुरी दिखानेवाले अंगज़

मराठों को पंढरपुर में श्री विठ्ठल के भजन में मस्त देखकर किसीको भी यह शक हो सकता है कि क्या यही वे जवांमर्द लोग हैं ? लेकिन यह परंपरा सैकड़ों बरसों से चली आई है और न मालूम आगे भी कितनी सदियों तक चलती रहेगी। आइए, इस तीर्थ के हमारे साथ आप भी दर्शन कर लीजिए।

: २ :

श्री विठ्ठल का मंदिर शहर के बीच में है और चारों तरफ से छोटे-छोटे मकानों से घिरा हुआ है। इस ३५० फुट लंबे और १७० फुट चौड़े मंदिर में चारों ओर मिलाकर आठ दरवाजे हैं। ज्यादातर लोग पूरब की तरफ के दरवाजों से आते-जाते हैं, इसलिए उसे 'महाद्वार' कहते हैं।

लेकिन मंदिर में सीधे नहीं चले जाते। पहले चंद्र-भागा नदी में स्नान करना पड़ता है। यह नदी बहुत ही छोटी और उथली है। इसके किनारे ग्यारह घाट बने हुए हैं, पर इन घाटों से वह बहुत दूर चली गई है। इसलिए इसका बड़ा रेतीला पाट बरसात के दिनों को छोड़कर हमेशा खुला रहता है। इस मैदान में भी लोग डेरे डाले रहते हैं।

स्नान करने के बाद भी तुरंत श्री विट्ठल के दर्शन नहीं करने होते। उससे पहले श्री पुंडलीक का दर्शन करना होता है। यह मंदिर बिल्कुल पास यानी

पुंडलीक की समाधि

नदी में ही है। सबसे ऊंचा शिखरवाला मंदिर भी पुंडलीक का है। उसके माता-पिता के समाधि-मंदिर भी वहीं हैं। मंदिर में एक शिवलिंग है, उसपर लगाये गए एक चेहरे की सूरत में ही पुंडलीक दर्शन देता है।

इस पुंडलीक की कहानी बड़ी मजेदार और सीख देनेवाली है। पुंडलीक पहले बहुत बुरा था। स्त्री के चक्कर में अपने मां-बाप को बहुत सताता था। एक बार वह काशी-यात्रा के लिए निकला तो उसने अपनी स्त्री को तो कंधे पर बिठा लिया, पर बूढ़े मां-बाप को जानवरों की तरह रस्सी से बांधकर घसीटता हुआ ले चला।

मराठों को पंढरपुर में श्री विठ्ठल के भजन में मस्त देखकर किसीको भी यह शक हो सकता है कि क्या यही वे जवांमर्द लोग हैं ? लेकिन यह परंपरा सैकड़ों बरसों से चली आई है और न मालूम आगे भी कितनी सदियों तक चलती रहेगी। आइए, इस तीर्थ के हमारे साथ आप भी दर्शन कर लीजिए।

: २ :

श्री विठ्ठल का मंदिर शहर के बीच में है और चारों तरफ से छोटे-छोटे मकानों से घिरा हुआ है। इस ३५० फुट लंबे और १७० फुट चौड़े मंदिर में चारों ओर मिलाकर आठ दरवाजे हैं। ज्यादातर लोग पूरब की तरफ के दरवाजों से आते-जाते हैं, इसलिए उसे 'महाद्वार' कहते हैं।

लेकिन मंदिर में सीधे नहीं चले आते। पहले चंद्र-भागा नदी में स्नान करना पड़ता है। यह नदी बहुत ही छोटी और उथली है। इसके किनारे ग्यारह घाट बने हुए हैं, पर इन घाटों से वह बहुत दूर चली गई है। इसलिए इसका बड़ा रेतीला पाट बरसात के दिनों को छोड़कर हमेशा खुला रहता है। इस मैदान में भी लोग डेरे डाले रहते हैं।

स्नान करने के बाद भी तुरंत श्री विठ्ठल के दर्शन नहीं करने होते। उससे पहले श्री पुंडलीक का दर्शन करना होता है। यह मंदिर बिल्कुल पास यानी

पुंडलीक की समाधि

नदी में ही है। सबसे ऊंचा शिखरवाला मंदिर भी पुंडलीक का है। उसके माता-पिता के समाधि-मंदिर भी वहीं हैं। मंदिर में एक शिवलिंग है, उसपर लगाये गए एक चेहरे की सूरत में ही पुंडलीक दर्शन देता है।

इस पुंडलीक की कहानी बड़ी मजेदार और सीख देनेवाली है। पुंडलीक पहले बहुत बुरा था। स्त्री के चक्कर में अपने मां-बाप को बहुत सताता था। एक बार वह काशी-यात्रा के लिए निकला तो उसने अपनी स्त्री को तो कंधे पर बिठा लिया, पर बूढ़े मां-बाप को जानवरों की तरह रस्सी से बांधकर घसीटता हुआ ले चला।

बाद में कुक्कुट मुनि के आश्रम में गंगा, जमुना, सरस्वती के उपदेश से उसको होश आया और उसने अपने माता-पिता की सेवा करनी शुरू की।

उसकी इस सेवा से भगवान श्रीकृष्ण बहुत ही प्रसन्न हुए और उसे वर देने के लिए उसके पास गए। उस समय पुंडलीक अपने माता-पिता के पैर दबा रहा था। भगवान को देखकर अपने हाथ का काम बंद करने के बजाय उसने पास पड़ी हुई ईंट उनकी तरफ फेंकी और कहा, "भगवन्, मैं अभी सेवा में लगा हूं। जब-तक मैं इससे निपट न लूं तबतक आप इस ईंट पर खड़े रहिए।"

भगवान वहीं खड़े-खड़े अपने भक्त की सेवा देखते रहे। जब पुंडलीक के माता-पिता सो गए तो वह भगवान के पास गया और पूछा, "महाराज, आपने यहांतक आने का कष्ट कैसे किया?"

मैं तुम्हारी सेवा से बहुत प्रसन्न हुआ हूं और तुम्हें वर देने के लिए यहां आया हूं।" भगवान ने जवाब दिया।

"वर! मुझे किसी वर की जरूरत नहीं है।" पुंडलीक ने कहा।

"फिर भी मैं तुमको कुछ-न-कुछ देना ही चाहता

हूं।" भगवान बोले।

"अगर आप वर देना ही चाहते हैं तो इतना कीजिए कि दुनिया के अंत तक आप यहीं इस ईंट पर खड़े रहिए, ताकि मेरी तरह दूसरे लोगों को भी आसानी से आपके दर्शन मिल सकें।" भक्त ने वर मांगा।

और तब से भगवान श्रीकृष्ण वहांपर खड़े हैं। लोग समझते हैं कि अट्ठाईस युगों से भगवान वहां हैं, मगर इतिहासकार कहते हैं कि ईसा की बारहवीं सदी में पुंडलीक यहां था और उसका यह मंदिर संत चांग-देव ने बनाया था।

भगवान की आज्ञा है कि उनके भक्त का दर्शन लोगों को पहले करना चाहिए। पुंडलीक की महिमा सभी संतों ने गाई है। संत तुकाराम प्यारभरे गुस्से से कहते हैं :

"कां रे पुंड्या मातलासी ?
उभें केलें विठ्ठलासी ॥"

—अरे पुंडलीक, तू इतना उन्मत्त क्यों हुआ है कि तूने हमारे विठ्ठल को खड़ा हो कर रक्खा है ?

महाराष्ट्र के संत विठ्ठल-रखुमाई को माता-पिता, पुंडलीक को भाई और चंद्रभागा को बहन मानते हैं, मानों सारे संतों का यह मायका है और जिस तरह

चंद्रभागा का एक दृश्य
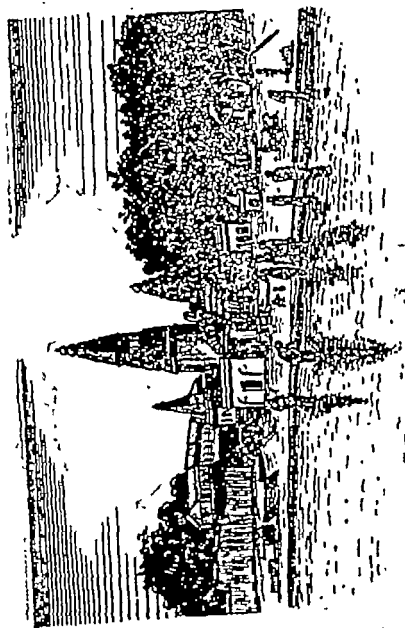
कोई स्त्री अपने ससुराल के कष्टों से मुक्ति पाने के लिए कुछ दिन पीहर चली जाती है उसी तरह ईश्वर के भक्त संसार के जंजाल से थोड़ी देर के लिए छुटकारा पाने की इच्छा से पंढरपुर चले जाते हैं।

महाद्वार से मंदिर में प्रवेश करते समय बड़ी सावधानी रखनी होती है; क्योंकि पहली सीढ़ी के नीचे संत नामदेव की समाधि है। उसपर पैर नहीं पड़ना चाहिए। इस सीढ़ी को 'नामदेव की सीढ़ी' कहते हैं।

इस सीढ़ी की कहानी भी अपनी विशेषता रखती है। संत नामदेव विट्ठल भगवान के बड़े भक्त थे। उन्होंने सोचा कि इस मंदिर की सीढ़ी के नीचे ही हम समाधि ले लें तो मंदिर में प्रवेश करनेवाले हर भक्त के चरण उस सीढ़ी को स्पर्श करेंगे और इस तरह उनके पैरों की धूल हमेशा हमारे सिर पर पड़ती रहेगी और हम पावन होते रहेंगे। लेकिन भक्तों को यह कैसे अच्छा लगता कि एक महान संत के सिर पर पांव रखकर आगे बढ़े? इसलिए लोगों ने उस सीढ़ी को पीतल की चद्दर से मढ़ दिया। अब जो भी वहां जाता है उस सीढ़ी पर पैर रखने के बजाय हाथों से उसे छूकर उसकी धूल माथे पर लगाता है और उसे लांघकर दूसरी सीढ़ी पर कदम रखता है। इस सीढ़ी

यहांपर एक खंभा सोने और रूपे की चद्दरों से मढ़ा हुआ है। इसे 'गरुड़-खंभा' कहते हैं। इसे गले लगाकर आगे बढ़ना होता है।

यहां से रूपे के दरवाजे में से अंदर जाने पर चार खंभों का मंडप आता है। पहले जमाने में यह दरवाजा रूपे के पत्तर से मढ़ा हुआ था, इसलिए उसे यह नाम दिया गया है। इस समय उसपर बहुत कम रूपा बचा है।

इस चार खम्भोंवाले मंडप में घुसते ही दाहिनी तरफ दीवार में बनाया हुआ श्री विठ्ठल का सोने का कमरा है। यहांपर रूपे का पलंग है और बड़ी कीमती गद्दियां, तकिये आदि सामान हैं। रात को सोने के समय की आरती के समय यह अलमारीनुमा कमरा खुला रहता है, वरना सारा दिन बंद रहता है।

मंदिर के मुख्य हिस्से को गर्भागार कहते हैं। यहांपर श्री विठ्ठल की काले पत्थर की खड़ी मूर्ति है। उसके सामने एक मोटी लकड़ी आड़ी गाड़ी गई है, जिसपर पीतल की चद्दर मढ़ी हुई है। इस लकड़ी के कारण दर्शन करनेवालों की भीड़ सीधे भगवान की मूर्ति पर आकर नहीं टकराती। लोगों को एक तरफ से कतार बनाकर मूर्ति तक पहुंचना होता है। यह

मूर्ति एक चबूतरे पर खड़ी है, जिसकी ऊंचाई साढ़े तीन फुट है।

सन् १८७३ ईसवी तक लोग भगवान के पैरों का अपनी भुजाओं से आलिंगन करते थे। लेकिन उस साल कोई बैरागी यहां आया। उसने विठ्ठल के पैरों पर पत्थर दे मारा। इसलिए वह पैर जख्मी होगया और उसके लिए पीछे से सहारा देना जरूरी हो गया। अतः अब लोग सिर्फ मूर्ति के चरणों पर माथा ही टेक सकते हैं।
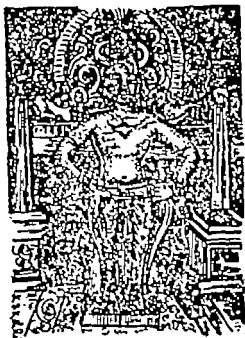
श्री विठ्ठल की मूर्ति

श्री विठ्ठल शब्द विष्णु (विष्णु–विठ्ठ-वेठ) शब्द से बना है, यानी वह विष्णु या कृष्ण का ही अवतार माना जाता है। पंढरपुर की मूर्ति की विशेषता यह है कि उसमें भगवान ने अपने दोनों हाथ कमर पर

रखे हैं। उनके दाहिने हाथ में शंख है और बायें में कमलनाल यानी कमल के फूल की डंडी है। सिरपर पारसी ढंग की टोपी या मुकुट है, जिसे कुछ लोग महादेव का लिंग भी कहते हैं। मूर्ति का चेहरा टोपी की तरह ही कुछ लंबोतरा है। कानों में तरह-तरह के गहने हैं। भुजाओं और कलाइयों में बाजूबंद (अंगद) और मणिबंध हैं। शरीर पर वस्त्र साफ दिखाई नहीं देता। पैरों के नीचे उलटा कमल-फूल है।

इस मूर्ति के आकार-प्रकार से ऐसा लगता है कि वह पिछले पांचसौ बरस पहले की होगी। मगर महाराष्ट्र-कर्नाटक में उससे भी हजार बरस पहले से विट्ठल की भक्ति चली आई थी। इसका मतलब यह हुआ कि इससे पहले की मूर्तियां या तो मुसलमानों द्वारा तोड़ी गई हों या फिर इधर-उधर चली गई हों। इस बात का भी सबूत मिलता है कि ईसा की सोलहवीं सदी में विजयनगर के राजा श्री कृष्णदेव राय यहां से श्री विट्ठल की मूर्ति अपने यहां ले गये थे। उसे शायद वापस भी लाया गया हो, पर इसका कोई सबूत नहीं मिलता।

कुछ लोगों ने यह साबित करने की भी कोशिश की है कि श्री विट्ठल की मूर्ति जैनों या बौद्धों की है, मगर उसमें कोई सचाई नहीं पाई जाती।

बंगाल के नामी वैष्णव संत चैतन्य महाप्रभु या गौरांग महाप्रभु सन् १५१०-११ ईसवी के आसपास दक्षिण के तीर्थों की यात्रा करने आये थे। उनकी यात्रा का वर्णन कृष्णदास कविराज नाम के भक्त कवि ने (सन् १५१७-१६१७ ई०) अपने 'चैतन्य चरितामृत' ग्रंथ में किया है। चैतन्य महाप्रभु के कोल्हापुर से पंढरपुर जाने के बाद क्या हुआ, इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है :

तथा हइते पांडुपुर आइला गौरचंद्र।
विठ्ठल ठाकुर देखि पाइल आनंद॥
प्रेमावेशे कैल प्रभु नर्तन-कीर्तन।
प्रभुप्रेमे देखि सबार चमत्कार मन॥
(मध्यलीला, ९वां परिच्छेद)

—वहां से गौरांगप्रभु पांडुपुर यानी पंढरपुर आ गये। वहां विठ्ठलठाकुर को देखकर उनको आनंद आ। प्रेमावेश में प्रभु ने नर्तन और कीर्तन किया। वह प्रभु-प्रेम देखकर सबको आश्चर्य हुआ।

श्रीविठ्ठल के कई नाम हैं। उनमें से विठोबा, विठु, पांडुरंग, पंढरिनाथ आदि महाराष्ट्र में विशेष प्रचलित हैं। श्री विठ्ठल के भक्त और साधु-संत तो उनको 'विठाई माउली' यानी 'मां' कहकर पुकारते हैं।

सुबह से रात तक विठोबा की कई तरह की

पूजाएं की जाती हैं। लगभग पांच बजे, सूरज निकलने से बहुत पहले, भगवान की 'काकड आरती' की जाती है। उस वक्त उपाध्याय।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविंद।
उत्तिष्ठ गरुड़ध्वज॥
उत्तिष्ठ कमलाकांत।
त्रैलोक्यं मङ्गलं कुरु॥

—हे गोविंद उठिये। हे गरुड़ध्वज, उठिये और तीनों लोकों (स्वर्ग, मृत्यु और पाताल) को मंगल बनाइये—इस तरह कहकर भगवान को जगाते हैं। उनके पैर धोकर चंदन लगाते हैं, मालाएं पहनाते हैं, धूप-दीप नैवेद्य दिखाते हैं (भोग चढ़ाते हैं) और 'कांकडा' यानी छोटे पलीते से आरती उतारते हैं। इसलिए इसे 'काकडा आरती' कहते हैं। अंत में मंत्रपुष्प की विधि होती है, जिसमें जोर-जोर से मंत्र बोलकर फूल चढ़ाये जाते हैं।

इसके बाद पंचामृत-पूजा होती है। यह कई तरह से देखने योग्य होती है। एक तो यह कि इसी समय श्री विठ्ठल महाराज की असली या खुली मूर्ति के अच्छी तरह दर्शन होते हैं। इसके बाद उनको कपड़े पहनाये जाते हैं, इसलिए मूर्ति के असली रूप में दर्शन करने

हों तो यही समय ठीक होता है।

इस पूजा से पहले भगवान की बासी मालाएं और कपड़े उतारे जाते हैं। फिर दूध, दही, घी, शक्कर और शहद के पंचामृत से नहलाया जाता है। उसके बाद गर्म पानी से स्नान कराया जाता है और कपड़े पहनाकर भगवान को आइना दिखाया जाता है।

दोपहर की पूजा को 'मध्याह्न-पूजा' कहते हैं, जिसमें नैवेद्य दिखाना या भोग चढ़ाना ही खास बात होती है।

तीसरे पहर 'अपराह्न-पूजा' होती है, जिसमें भगवान के पैर धोकर उनके कपड़े बदले जाते हैं। इस समय श्रीविट्ठल की खुली मूर्ति देखने को मिलती है, लेकिन बहुत थोड़ी देर के लिए।

शाम को 'धूपारती' होती है। इस समय भगवान के पांव पखारकर उनके माथे पर चंदन का आड़ा तिलक लगाया जाता है और गले में बड़ी-बड़ी मालाएं पहनाई जाती हैं। इस पूजा में पहले धूप से आरती उतारते हैं और बाद में दीपक से, इसलिए इसे 'धूपारती' कहते हैं।

यहांपर भोग चढ़ाते समय भगवान के सामने एक परदा लटकाया जाता है, ताकि लोग भगवान को भोग

पूजाएं की जाती हैं। लगभग पांच बजे, सूरज निकलने से बहुत पहले, भगवान की 'काकड़ आरती' की जाती है। उस वक्त उपाध्याय।

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविंद।
उत्तिष्ठ गरुड़ध्वज ॥
उत्तिष्ठ कमलाकांत।
त्रैलोक्यं मङ्गलं कुरु ॥

—हे गोविंद उठिये। हे गरुड़ध्वज, उठिये और तीनों लोकों (स्वर्ग, मृत्यु और पाताल) को मंगल बनाइये—इस तरह कहकर भगवान को जगाते हैं। उनके पैर धोकर चंदन लगाते हैं, मालाएं पहनाते हैं, धूप-दीप नैवेद्य दिखाते हैं (भोग चढ़ाते हैं) और 'कांकडा' यानी छोटे पलीते से आरती उतारते हैं। इसलिए इसे 'काकडा आरती' कहते हैं। अंत में मंत्रपुष्प की विधि होती है, जिसमें जोर-जोर से मंत्र बोलकर फूल चढ़ाये जाते हैं।

इसके बाद पंचामृत-पूजा होती है। यह कई तरह से देखने योग्य होती है। एक तो यह कि इसी समय श्री विठ्ठल महाराज की असली या खुली मूर्ति के अच्छी तरह दर्शन होते हैं। इसके बाद उनको कपड़े पहनाये जाते हैं, इसलिए मूर्ति के असली रूप में दर्शन करने

हों तो यही समय ठीक होता है।

इस पूजा से पहले भगवान की बासी मालाएं और कपड़े उतारे जाते हैं। फिर दूध, दही, घी, शक्कर और शहद के पंचामृत से नहलाया जाता है। उसके बाद गर्म पानी से स्नान कराया जाता है और कपड़े पहनाकर भगवान को आइना दिखाया जाता है।

दोपहर की पूजा को 'मध्याह्न-पूजा' कहते हैं, जिसमें नैवेद्य दिखाना या भोग चढ़ाना ही खास बात होती है।

तीसरे पहर 'अपराह्न-पूजा' होती है, जिसमें भगवान के पैर धोकर उनके कपड़े बदले जाते हैं। इस समय श्रीविट्ठल की खुली मूर्ति देखने को मिलती है, लेकिन बहुत थोड़ी देर के लिए।

शाम को 'धूपारती' होती है। इस समय भगवान के पांव पखारकर उनके माथे पर चंदन का आड़ा तिलक लगाया जाता है और गले में बड़ी-बड़ी मालाएं पहनाई जाती हैं। इस पूजा में पहले धूप से आरती उतारते हैं और बाद में दीपक से, इसलिए इसे 'धूपारती' कहते हैं।

यहांपर भोग चढ़ाते समय भगवान के सामने एक परदा लटकाया जाता है, ताकि लोग भगवान को भोग

ग्रहण करते हुए न देख सकें।

रात को जो भारती होती है, उसे 'शेजारती' यानी सोने की भारती कहते हैं। इसके बाद भगवान सो जाते हैं।

भगवान श्रीविट्ठल को हर बुधवार तथा शनिवार और रखुमाई को हर मंगलवार और शुक्रवार को अभ्यंगस्नान कराया जाता है, यानी तेल वगैरह लगाकर नहलाया जाता है। एकादशी के दिन हर रोज की तरह भगवान सोने के लिए नहीं जाते। उस रात उनके सामने भजन-कीर्तन चलता रहता है। उस दिन भोग में भी हर रोज की चीजें नहीं, बल्कि उपवास में चलनेवाली चीजें रहती हैं। धन-संक्रांति से लेकर मकर-संक्रांति तक भगवान को गर्म खिचड़ी का नैवेद्य होता है और कपड़े पहनाते समय कान पर पट्टी बांधते हैं। माघ सुदी पंचमी से रंगपंचमी तक मूर्ति के पैरों पर गुलाल डाला जाता है और सिर पर साफा बांधते हैं। गर्मियों में तीसरे पहर भगवान को ठंडा जल, नाश्ता और पान दिया जाता है। गोकुल-अष्टमी के नौ दिन तक यहां बड़ा उत्सव रहता है, जिसमें कथा-कीर्तन और ब्राह्मण-भोज का विशेष कार्यक्रम रहता है।

आषाढ़ बदी १ और कार्तिक बदी २ को मंदिर में 'काला' होता है, यानी एक मिट्टी की हंडी में दही और जुआर की खीलें भरकर उसे ऊंची जगह पर लटकाया जाता है और नीचे से उसे तोड़ देते हैं। इसमें से गिरनेवाला दही और खीलें प्रसाद के तौर पर लोग खाते हैं।

आषाढ़ और कार्तिक की एकादशियों को भगवान के दर्शन के लिए लाखों लोग 'पुंडलीक वरदा हरि विट्ठल' के नारे लगाते हुए पंढरपुर में जमा होते हैं। इसमें ज्यादातर वे ही लोग होते हैं, जो बिला नागा इन एकादशियों को पंढरपुर आते हैं। कुछ लोग हर महीने की एकादशियों को भी पंढरपुर की यात्रा करते हैं। ऐसे लोगों को 'वारकरी' कहते हैं, जिनमें सभी जातियों के लोग होते हैं। कुछ दिन पहले हरिजनों को मंदिर में आने का अधिकार नहीं था। वे बाहर से ही दर्शन कर लेते थे, लेकिन यह अन्याय बर्दाश्त न होने से महाराष्ट्र के महान संत एवं नेता स्व० श्री पांडुरंग सदाशिव साने (साने गुरुजी) ने कुछ साल पहले आमरण अनशन शुरू किया था, जिससे यह मंदिर हरिजनों के लिए खुल गया।

पंढरपुर के वारकरी ज्यादातर किसान ही होते

हैं। वे गले में तुलसी की मणियों की माला पहनते हैं और शराब-मांस को नहीं छूते। वे जब भगवान के भजन गाने में मस्त हो जाते हैं तो उनकी वह मस्ती देखते ही बनती है। कई वारकरी भजन-मंडलियां बनाकर पैदल आते हैं। इन मंडलियों को 'दिंडी' कहते हैं। सारे महाराष्ट्र में से ऐसी दिंडियां यहां आती हैं।

पंढरपुर से वापस जाते समय यात्री जो चीजें प्रसाद के तौर पर ले जाते हैं, उनमें बुक्का, कुंकम, लाख की चुड़ियां तुलसी की मालाएं, जुवार और मकई की खीलें जरूर रहती हैं। बुक्का एक तरह की बुकनी होती है, जो अगरबत्ती की तरह काली और खुशबूदार होती है। पंढरपुर जानेवाले हर आदमी के माथे पर बुक्का लगा हुआ होता है। अपने-अपने घर पहुंचने पर लोग अपने पड़ौसियों और रिश्तेदारों वगैरह को ये चीजें बानगी के तौर पर भेंट देते हैं और वे लोग बड़ी श्रद्धा से उनको लेते हैं। यात्रा के दिनों में पंढरपुर शहर और उसके आसपास का इलाका 'ज्ञानोबा तुकाराम', 'विठोबा माउली, 'पुण्डलीक वरदा हरि विठ्ठल' आदि के नारों से और तुकाराम, ज्ञानदेव, एकनाथ, नामदेव, जनाबाई, चोखामेला आदि

संतों के भजनों से गूंज उठता है। लोग अपने घरेलू झंझटों एवं दुःखों को कुछ समय के लिए भूल जाते हैं।

: ३ :

आमतौर पर महाराष्ट्र में जितने भी विठ्ठल-मंदिर हैं, उनमें विठोबा के पास रखुमाई की भी मूर्ति उसी तरह कमर पर हाथ रखे हुए पाई जाती है और श्री विठ्ठल के चित्रों में भी उनकी बाईं तरफ रखुमाई रहती हैं। इसलिए लोगों को ऐसा लगता है कि पंढरपुर में भी विठ्ठल के साथ रखुमाई होंगी। मगर ऐसी बात नहीं है। वहांपर अकेले विठ्ठल ही हैं।

इस संबंध में एक कहानी कही जाती है। एक बार रुक्मिणीदेवी दूसरी रानियों से रूठकर यहां दिंडीरवन में आ बैठीं। उन्हें खोजने के लिए भगवान श्रीकृष्ण स्वयं निकले। घूमते-घामते वह वहां पहुंच गये, जहां पुंडलीक अपने माता-पिता की सेवा कर रहा था। भक्त को दर्शन और वर दिये बिना भगवान आगे कैसे बढ़ते? उस वर के कारण ही उनको पुंड-लीक की दी हुई ईंट पर खड़ा रहना पड़ा। यह ईंट रुक्मिणीदेवी के स्थान से कुछ दूरी पर पड़ी

थी। रुक्मिणीदेवी अपना हठ छोड़कर भगवान के पास जाने को तैयार न हुई। इसलिए उन दोनों में अंतर बना रहा।
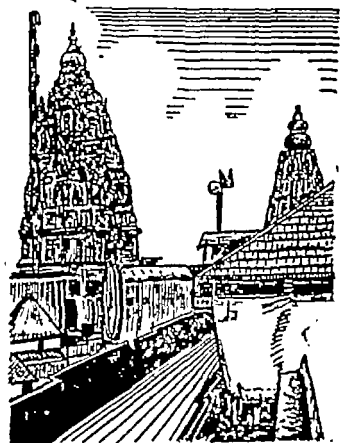
विठ्ठल और रखुमाई के मंदिर

आज भी विठ्ठल के मंदिर के पीछे उत्तर-पश्चिम कोने में रखुमाई यानी रुक्मिणी का मंदिर है। कुछ लोगों का खयाल है कि 'रखुमाई' शब्द 'लक्ष्मी'

से बना है। जो हो, आज तो उनको रखुमाई रखुमा-बाई ही कहते हैं। उनका यह मंदिर भी बहुत बड़ा और शानदार है।

इस मंदिर की सीढ़ियों पर चढ़ जाने के बाद सामने की दीवार में एक शिलालेख दिखाई देता है। इसे 'चौ-र्यांशीचा लेख' यानी चौरासी का लेख कहते हैं। वास्तव में इस लेख में मंदिर के लिए दान देनेवाले चौरासी लोगों के नाम दर्ज किये हुए हैं और उनके दानों का वर्णन है। लेकिन लोगों में यह धारणा फैल गई कि इसका संबंध चौरासी लाख योनियों से है। अतः यह समझा जाता है कि इस पत्थर पर पीठ घिसने से चौरासी के चक्कर से आदमी मुक्त होता है। इस तरह लाखों-करोड़ों पीठें घिसने से उसपर का लेख मिटता जा रहा है।

सोलह खंभोंवाले मंडप के दक्षिणी दरवाजे को 'तरटी दरवाजा' कहते हैं। इसकी कहानी भी बड़ी मजेदार है।

श्री विठ्ठल की कान्हू नाम की एक पात्रा यानी दासी थी। वह 'कान्हू पात्रा' या 'कान्होपात्रा' नाम से मशहूर थी। वह पंढरपुर से नजदीक मंगलवेढ़े गांव में रहती थी। देवदासी होने की वजह से गाना-बजाना ही उसका काम,था' वह बहुत ही रूपवती थी। उसके

मंदिर के आसपास मौजूद हैं। उनमें से हरएक के सामने यात्री को कुछ-न-कुछ पैसे जरूर डालने पड़ते हैं, क्योंकि न डालें तो यहां के पंडे सताते हैं।

: ४ :

दूसरी जगहों की तरह पंढरपुर में भी मुख्य मंदिर के अलावा और कई मंदिर हैं। इनमें पंचमुखी, मारुति, मुलेश्वर, पद्मावती, लखूबाई, व्यास, अम्बाबाई, यमाई व ज्योतिबा, नगरेश्वर, त्र्यंबकेश्वर, ताकपिठ्या विठोबा, काटेश्वर, श्रीराम, कालभैरव, गजपति, शाकंभरी, मल्लिकार्जुन, मुरलीधर, दत्त, काला मारुति, लाल मारुति, अमृतेश्वर, महादेव वगैरह महत्व के हैं। मराठी संत नामदेव महाराज का मंदिर बड़ा विशाल, स्वच्छ और मनोहारी है। यह मंदिर उसी स्थान पर बनाया गया है, जहांपर श्री नामदेव रहते थे। दत्त-घाट पर छः हाथ और एक सिरवाली जो दत्त की मूर्ति है, बड़ी ही सुंदर है। एकनाथ महाराज के परदादा श्री भानुदास विजयनगर के राजा के यहां श्री विठ्ठल की मूर्ति वापस लाने के लिए चल पड़े तो उन्होंने काले हनुमान की मूर्ति की स्थापना की थी, इसलिए वारकरी लोग इसे बहुत पवित्र मानते हैं। जब भजन-मंडलियां

इसके सामने से निकलती हैं तो इस मंदिर के सामने एक-दो अभंग (भजन) कहे बगैर आगे नहीं बढ़तीं।

पुंडलीक के मंदिर से दक्षिण में लगभग पौन मील की दूरी पर विष्णुपद का मंदिर है। यह नदी में ही है। यहांतक जाने के लिए नौकाएं हमेशा तैयार मिलती हैं और पैदल भी जाया जा सकता है। यह विष्णुपद गया के विष्णुपद का छोटा नमूना है। वहां पर गाय के पैर, वह पत्थर का कटोरा जिसमें श्रीकृष्ण ने भोजन किया था, आदि चीजें हैं। इस विष्णुपद पर पितरों के लिए पिंडदान करके कई लोग गयाश्राद्ध का पुण्य प्राप्त करते हैं। यह मंदिर सन् १६४० ईसवी का बना है। इसका दृश्य बड़ा सुहावना है।

पंढरपुर से दक्षिण में लगभग एक मील की दूरी पर गोपालपुर है। यहां एक छोटी-सी अलग बस्ती है। श्रीगोपालकृष्ण का मंदिर है। यह मंदिर देखने योग्य है, क्योंकि इसकी रचना जमीन पर के किले की तरह है। आषाढ़ और कार्तिक की पूर्णिमा के दिन 'गोपाल-काला' होता है। उस समय सारे यात्री यहां आ जाते हैं। इस 'काला' का प्रसाद यानी दही लिये बिना कोई भी वारकरी पंढरपुर नहीं छोड़ता।

गोपालकृष्ण के पीछे उनके ससुर भीमक महाराज

अपनी बेटी के साथ खड़े हैं। श्री रुक्मिणी का गुस्सा खत्म होने पर श्रीहरि से उनकी भेंट यहींपर हुई थी। यहांपर यशोदा माता की ऊखली, मूसल, चक्की, वगैरह चीजें देखने को मिलती हैं। इन चीजों के पास पंडे बैठे रहते हैं और यात्रियों से पैसा-दो-पैसा लेकर उनको पुण्य एवं आशीर्वाद देते हैं।

यहां से पास ही महाराष्ट्र की मीरा 'जनाबाई' का मंदिर है, जो जमीन के अंदर गुफा की सूरत में है। यहां उसका रसोईघर, खटिया, गुदड़ी वगैरह चीजें दिखाई जाती हैं।

इस तरह और भी कई छोटे-मोटे स्थान यहांपर हैं। पर श्री विठ्ठल का मंदिर ही यहां का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। श्री विठ्ठल भगवान के दर्शनों के लिए सैकड़ों मील की दूरी से लोग आते हैं, घंटों बारी लगाकर खड़े रहते हैं और दर्शन पाकर धन्य होते हैं।

●

दक्षिण की काशी

काशी का महत्व

काशी हमारे देश का बहुत बड़ा तीर्थ है। हर हिन्दू की इच्छा होती है कि जीवन में कम-से-कम एक बार तो वह काशी हो ही आवे। मराठी में एक कहावत है, 'काशीस जावें नित्य वदावें,' यानी हम हमेशा यह मंत्र जपते रहें कि काशी जाना चाहिए, जिससे हम काशी न भी जा सकें तो भी उसकी याद रहने से उतना पुण्य तो मिल ही जाता है। यह भी हो सकता है कि लगातार उसीका ध्यान करते रहने से हम किसी दिन सचमुच ही काशी चले जायं। जो हो, हर हिन्दू के मन में काशी के लिए बड़ी श्रद्धा होती है। इसीलिए जो लोग दूरी के कारण काशी नहीं जा सकते, वे अपने आस-पास ही कहीं एक क्षेत्र खोज निकालते हैं और उसे अपने यहां की काशी मान लेते हैं। दक्षिण भारत में यह बात विशेष रूप से पाई जाती है। यहां दक्षिण की काशी कहलानेवाले कई क्षेत्र आज भी मौजूद हैं।

ऐसा ही एक महान् क्षेत्र है करवीर, जिसे कोल्हा-

अपनी बेटी के साथ खड़े हैं। श्री रुक्मिणी का गुस्सा खत्म होने पर श्रीहरि से उनकी भेंट यहींपर हुई थी। यहांपर यशोदा माता की ऊखली, मूसल, चक्की, वगैरह चीजें देखने को मिलती हैं। इन चीजों के पास पंडे बैठे रहते हैं और यात्रियों से पैसा-दो-पैसा लेकर उनको पुष्प एवं आशीर्वाद देते हैं।

यहां से पास ही महाराष्ट्र की मीरा 'जनाबाई' का मंदिर है, जो जमीन के अंदर गुफा की सूरत में है। यहां उसका रसोईघर, खटिया, गुदड़ी वगैरह चीजें दिखाई आती हैं।

इस तरह और भी कई छोटे-मोटे स्थान यहांपर हैं। पर श्री विठ्ठल का मंदिर ही यहां का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। श्री विठ्ठल भगवान के दर्शनों के लिए सैकड़ों मील की दूरी से लोग आते हैं, घंटों बारी लगाकर खड़े रहते हैं और दर्शन पाकर धन्य होते हैं।

●

दक्षिण की काशी

काशी का महत्व

काशी हमारे देश का बहुत बड़ा तीरथ है। हर हिन्दू की इच्छा होती है कि जीवन में कम-से-कम एक बार तो वह काशी हो ही आवे। मराठी में एक कहावत है, 'काशीस जावें नित्य वदावें,' यानी हम हमेशा यह मंत्र जपते रहें कि काशी जाना चाहिए, जिससे हम काशी न भी जा सकें तो भी उसकी याद रहने से उतना पुण्य तो मिल ही जाता है। यह भी हो सकता है कि लगातार उसीका ध्यान करते रहने से हम किसी दिन सचमुच ही काशी चले जायं। जो हो, हर हिन्दू के मन में काशी के लिए बड़ी श्रद्धा होती है। इसीलिए जो लोग दूरी के कारण काशी नहीं जा सकते, वे अपने आस-पास ही कहीं एक क्षेत्र खोज निकालते हैं और उसे अपने यहां की काशी मान लेते हैं। दक्षिण भारत में यह बात विशेष रूप से पाई जाती है। वहां दक्षिण की काशी कहलानेवाले कई क्षेत्र आज भी मौजूद हैं।

ऐसा ही एक महान् क्षेत्र है करवीर, जिसे कोल्हा-

पुर भी कहा जाता है। महाराष्ट्र के लोगों के मन में कोल्हापुर का महत्व कई कारणों से बहुत अधिक है। छत्रपति शिवाजी महाराज के वंशजों का राज यहां पर अभी-अभी तक चल रहा था, इसलिए लोगों के मन में कोल्हापुर राज्य के विषय में बड़ी श्रद्धा रही है। कोल्हापुर के भूतपूर्व छत्रपति स्वर्गीय श्री शाहू महाराज ने महाराष्ट्र की साधारण जनता को ऊपर उठाने के लिए बहुत प्रयत्न किया था और उसके लिए शिक्षा के कई साधन जुटाये थे। इसलिए भी महाराष्ट्र की आम जनता कोल्हापुर की ऋणी है। जात-पांत और छुआछूत के भेद-भावों को मिटाने में भी कोल्हापुर के महाराजाओं और जन-नेताओं का बड़ा भाग रहा है।

महालक्ष्मी की मूर्ति, अलंकारों के साथ

लेकिन मराठीभाषी जनता के लिए ही नहीं, बल्कि आन्ध्र और कर्नाटक की जनता के लिए भी कोल्हापुर का जो महत्व है, उसका कारण वहां की जगदम्बा अम्बाबाई है। इस महालक्ष्मी जगदम्बा के दर्शनों के लिए आज भी हर साल हजारों-लाखों

यात्री कोल्हापुर जाते रहते हैं।

दक्षिण की काशी :

कोल्हापुर शहर बंबई-बंगलोर-मार्ग पर पूना से बस के रास्ते १४६ मील है। पक्की कोलतार की सड़क होने के कारण पूना से छः घन्टे के अन्दर सरकारी बस आराम से कोल्हापुर पहुंचा देती है। इस रास्ते में सातारा, कराड, आदि ऐतिहासिक और व्यापारिक महत्व के शहर आते हैं। भारत का एक बड़ा बांध 'कोयना बांध' कराड के पास ही बन रहा है। इस बांध के बन जाने पर इस इलाके को काफ़ी बिजली मिल जायगी।

रेल के रास्ते भी पूना से कोल्हापुर जाया जा सकता है। पूना से बंगलोर जानेवाली रेल के रास्ते पर पूना से १६० मील पर मिरज स्टेशन आता है। वहां से कोल्हापुर लगभग तीस मील है। रात को पूना से चलनेवाली गाड़ी सुबह कोल्हापुर पहुंचा देती है।

नाम कैसे पड़ा ?

कोल्हापुर शहर छः मील लम्बा और पांच मील चौड़ा है। ऐसा लगता है, यह शहर कटोरी की तरह एक बड़े गड्ढे में बसा हुआ है। कुछ लोगों का विचार है कि द्राविड़ भाषा के 'कोल्ह' अर्थात् दर्रा या घाटी शब्द पर से 'कोल्लापुर' और उसपर से कोल्हापुर'

देवता को माननेवाले हरिजनों की बस्ती भी पास ही है। यहां की बस्ती किसने बसाई, इसका किसीको पता नहीं था, इसलिए लोग मानते थे कि स्वयं ब्रह्मा ने ही उसे बसाया था। इसीसे उसका नाम 'ब्रह्मपुरी' पड़ गया था।

आगे चलकर यहां कई राजाओं ने राज किया, जिनके सिक्के यहां मिले हैं। अठारहवीं सदी के शुरू में मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब मराठों को कुचल डालने के इरादे से जब महाराष्ट्र में दौड़-धूप कर रहा था, तब उसने अपना डेरा ब्रह्मपुरी में लगाया था। उस ज़माने की एक दरगाह यहां मौजूद है। उसके बाद अंग्रेज़ों के ज़माने में ईसाई मिशनरियों ने यहां अपना अड्डा जमाया और एक गिरजाघर भी खड़ा किया। इस तरह दो हज़ार से भी अधिक बरसों का इतिहास इस शहर की बुनियाद में छिपा पड़ा है।

छत्रपति की राजधानी

छत्रपति शिवाजी महाराज की मृत्यु के बाद उनके छोटे बेटे राजाराम की पत्नी महारानी ताराबाई ने अपने पति छत्रपति राजाराम महाराज के मरने के बाद सन् १७०० ईसवी में अपने पुत्र शिवाजी (दूसरे) के नाम से कोल्हापुर में अपना अलग राज स्थापित किया। पहले कई साल तक इस राज को

राजधानी कोल्हापुर से बारह मील दूर पन्हाला नाम के किले पर रही। बाद में सन् १७८२ ईसवी में इस राज की राजधानी कोल्हापुर हुई। तबसे उसका महत्व बढ़ता गया। यहां के राजा अंग्रेजों के दोस्त थे, मगर यहां के एक राजा शिवाजी (चौथे) के भाई चिमा-साहब ने सन् १८५७ के स्वतंत्रता-युद्ध में जोरदार भाग लिया था, जिसके कारण उन्हें अंग्रेजों का कैदी बनकर कराची जाना पड़ा और वहीं वह शहीद हो गये।

महालक्ष्मी का भव्य मन्दिर

यह तो हुआ इस शहर का ऐतिहासिक महत्व, परन्तु इसका असली महत्व धार्मिक है। यहां आदि माया महालक्ष्मी का जो मन्दिर है, उसीके कारण इसे पुराने जमाने से आज तक इतना महत्व प्राप्त हुआ है।

यह मन्दिर द्राविड़ ढंग का है। इसका पत्थर काला और मजबूत है। इसमें लकड़ी का प्रयोग बिलकुल नहीं किया गया है; इसलिए पिछले डेढ़ हजार बरसों में धूप और बारिश का कुछ भी असर उसपर नहीं हुआ है। मन्दिर की लम्बाई पूर्व-पश्चिम में दो सौ फुट और दक्षिण-उत्तर में चौड़ाई डेढ़ सौ फुट है। मूल मन्दिर तीस फुट ऊंचा था। उसपर संकेश्वर मठ

के श्री शंकराचार्य ने अठारहवीं सदी में नया शिखर बनवाया, जिसकी ऊंचाई पैंसठ फुट है। इसके अन्दर
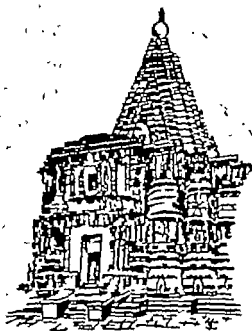
महालक्ष्मी का भव्य मन्दिर

प्रवेश करने के लिए चारों दिशाओं में एक-एक बड़ा दरवाजा है। पश्चिम की तरफ का दरवाजा बड़ा ही आलीशान और मजबूत है, जिसे महाद्वार कहते हैं। वहांतक पहुंचने के लिए कुछ सीढ़ियां चढ़नी पड़ती हैं और फिर कुछ सीढ़ियां उतरकर हम मन्दिर के आंगन में पहुंच जाते हैं।

आंगन में बाइं ओर एक चबूतरे पर पत्थर के

कुछ दीप-स्तंभ हैं, जिन्हें दीपमालाएं कहते हैं। नवरात्रि के दिनों में और आश्विन की पूर्णमासी को रात में इन दीप-स्तंभों पर जब दीये जलाये जाते हैं तब वह दृश्य बड़ा ही मनोहारी दीखता है।

बाहर से देखने पर इस मन्दिर का आकार सितारे जैसा दिखाई देता है। इस ढंग के शिल्प को सर्वतोभद्र शिल्प कहा जाता है। इसकी पत्थर की संगीन दीवारों में चौकोर पत्थर के खंभे हैं, जिनपर बेल-बूटे और तरह-तरह की नक्काशी की गई है। इन दीवारों पर पुराणों में कही गई कहानियां भी खोदी गई हैं। चौकोर खंभों पर चौंसठ योगिनियां हैं, जो भरत के नाट्य-

चौंसठ योगिनियों में से एक

शास्त्र में वर्णित नृत्य की भूमिका में हैं। नाच करनेवाली इन देवियों को देखकर आज भी कलाकार चकित होते हैं। उनकी मोहकता, कोमलता और सजीवता देखते ही बनती है।

महालक्ष्मी के इस मन्दिर के ग्रहाते में कई छोटे-बड़े मन्दिर हैं, जिनमें विट्ठल, सत्यनारायण, गौरी-शंकर, काशी विश्वेश्वर, केदारलिंग, कुंडलेश्वर, सिद्धेश्वर, शाकंबरी, मुक्तेश्वरी, हरिहरेश्वर, दत्तात्रेय, शेषशायी, नवग्रह आदि देवताओं के मन्दिर प्रमुख हैं। काशी की तरह यहां भी एक 'मणिकर्णिका' तीर्थ है। नवग्रहों के मन्दिर के मंडप के खंभों और छत में चालुक्यों के जमाने की सुन्दर कारीगरी है। उस दृष्टि से यह छोटा मन्दिर भी देखने योग्य है। शेष-शायी भगवान् का मन्दिर पूर्वी दरवाजे के पास है। उसपर के शिला-लेखों और मूर्तियों से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि पहले यह जैन-मन्दिर था। महालक्ष्मी के इस मन्दिर के बारे में भी कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि यहांपर असल में जैनियों की देवी पद्मावती का मन्दिर था, जिसे जैन-राजाओं ने दक्षिणी ढंग पर बनवाया था। आगे चलकर इस प्रदेश पर जब हिन्दुओं का राज हुआ, तो उन्होंने उसी स्थान पर महालक्ष्मी की स्थापना करके इसे

हिन्दू-मन्दिर बनाया, इसके प्रमाण के रूप में वे मन्दिर की दीवारों पर खोदी गई जैन-मूर्तियों का उल्लेख करते हैं।

पांच मील तक सुनाई देनेवाली घंटी

श्री महालक्ष्मी के देवालय का उत्तरी दरवाजा
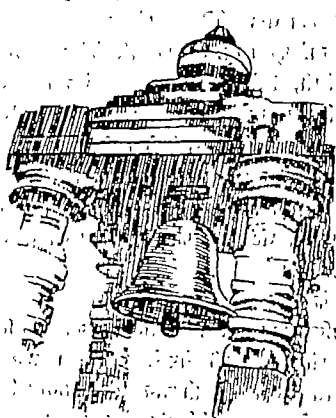
चार-पांच मील तक सुनाई देनेवाली घंटी

'घंटी दरवाजा' कहलाता है। यहांपर जो घंटी है, वह इतनी बड़ी है कि उसकी आवाज सुबह और रात

के शांत समय में चार-पांच मील तक सुनाई देती है। कोल्हापुर के छत्रपति स्वर्गीय शाहू महाराज जब सन १९०१ ईसवी में यूरोप के दौरे पर गये थे तब वहां से खास महालक्ष्मी के लिए वह यह घंटी लाये थे।

उससे पहले यहां जो घंटी थी, वह भी बहुत बड़ी थी। उसका घेरा नीचे की ओर छः फुट था और ऊंचाई ढाई फुट। यह घंटी पुर्तगालियों के एक गिरजाघर में थी, जिसे पहले बाजीराव पेशवा के भाई चिमाजी अप्पा वसई की लड़ाई में सन १७३९ ईसवी में जीतकर लाये थे। उसमें छोटी-सी दरार पड़ जाने के कारण उसे वहां से हटाकर उसकी जगह आज की उससे भी बड़ी घंटी लगाई गई थी। पुर्तगालियोंवाली पुरानी घंटी अब कोल्हापुर के अजायबघर में रखी हुई है।

मन्दिर के मंडप

मन्दिर के अहाते में से मन्दिर में जाने के लिए दक्षिण और उत्तर की ओर से रास्ते हैं। इनमें से उत्तरवाले दरवाजे से ही लोग अन्दर जाना अधिक पसन्द करते हैं। कुछ सीढ़ियां चढ़ने के बाद हम मुख्य या मुखमंडप में प्रवेश करते हैं। यहांपर भरत-शत्रुघ्न की मूर्तियां हैं, जिनके बारे में यह कहा जाता है कि ये जैन-मन्दिरों में रहनेवाले द्वारपालों की

मूर्तियां हैं। इस मंडप में हर तरफ़ पत्थर के खंभे-ही-खंभे हैं, जिनकी तादाद अड़सठ है। मंडप के बीचों-बीच जो दालान है, उसके चार कोनों में मुरलीधर, वीरभद्र, विष्णु और वासुदेव की चार मूर्तियां हैं। मुखमंडप के पश्चिम में चौंतीस खंभोंवाला मुक्ति-मंडप है, जिसमें गणेशजी विराजमान हैं।

इस मंडप में से आगे बढ़ने पर मणि-मंडप या अर्धमंडप आता है। इस मंडप में से अन्दर आने के दरवाजे के दोनों ओर जय-विजय की बड़ी-बड़ी मूर्तियां हैं। ये मूर्तियां लगभग सोलह फुट ऊंची हैं। हाथों में हथियार लेकर अपने शरीर को तीन जगह टेढ़ा करके (त्रिभंगी ढंग से) ये द्वारपाल खड़े हैं। इनकी शिल्पकला ऊंचे दर्जे की मानी गई है। दंतकथा है कि महालक्ष्मी का यह देवालय दैत्यों ने एक ही रात में खड़ा किया था और उसकी रक्षा के लिए ये दो दैत्य यहां अनादि काल से खड़े हैं।

मणि-मंडप से अन्दर जाने पर सामने ही एक दरवाजा दिखाई देता है, जिसपर चांदी का पत्तर चढ़ा हुआ है। इसके अन्दर प्रायः पुजारी ही जाते हैं। बाहर से आनेवाले दर्शकों को इसी दरवाजे में से माता महालक्ष्मी के दर्शन करने होते हैं। इस दरवाजे तक सब कोई जा सकते हैं—वे हरिजन हों या दूसरे कोई।

के शांत समय में चार-पांच मील तक सुनाई देती है। कोल्हापुर के छत्रपति स्वर्गीय शाहू महाराज जब सन १९०१ ईसवी में यूरोप के दौरे पर गये थे तब वहां से खास महालक्ष्मी के लिए यह यह घंटी लाये थे।

उससे पहले यहां जो घंटी थी, वह भी बहुत बड़ी थी। उसका घेरा नीचे की ओर छः फुट था और ऊंचाई ढाई फुट। यह घंटी पुर्तगालियों के एक गिरजाघर में थी, जिसे पहले बाजीराव पेशवा के भाई चिमाजी अप्पा वसई की लड़ाई में सन १७३९ ईसवी में जीतकर लाये थे। उसमें छोटी-सी दरार पड़ जाने के कारण उसे वहां से हटाकर उसकी जगह आज की उससे भी बड़ी घंटी लगाई गई थी। पुर्तगालियों-वाली पुरानी घंटी अब कोल्हापुर के अजायबघर में रखी हुई है।

मन्दिर के मंडप

मन्दिर के अहाते में से मन्दिर में जाने के लिए दक्षिण और उत्तर की ओर से रास्ते हैं। इनमें से उत्तरवाले दरवाजे से ही लोग अन्दर जाना अधिक पसन्द करते हैं। कुछ सीढ़ियां चढ़ने के बाद हम मुख्य या मुखमंडप में प्रवेश करते हैं। यहांपर भरत-शत्रुघ्न की मूर्तियां हैं, जिनके बारे में यह कहा जाता है कि ये जैन-मन्दिरों में रहनेवाले द्वारपालों की

मूर्तियां हैं। इस मंडप में हर तरफ़ पत्थर के खंभे-ही-खंभे हैं, जिनकी तादाद अड़सठ है। मंडप के बीचों-बीच जो दालान है, उसके चार कोनों में मुरलीधर, वीरभद्र, विष्णु और वासुदेव की चार मूर्तियां हैं। मुखमंडप के पश्चिम में चौंतीस खंभोंवाला मुक्ति-मंडप है, जिसमें गणेशजी विराजमान हैं।

इस मंडप में से आगे बढ़ने पर मणि-मंडप या अर्धमंडप आता है। इस मंडप में से अन्दर जाने के दरवाजे के दोनों ओर जय-विजय की बड़ी-बड़ी मूर्तियां हैं। ये मूर्तियां लगभग सोलह फुट ऊंची हैं। हाथों में हथियार लेकर अपने शरीर को तीन जगह टेढ़ा करके (त्रिभंगी ढंग से) ये द्वारपाल खड़े हैं। इनकी शिल्पकला ऊंचे दर्जे की मानी गई है। दंतकथा है कि महालक्ष्मी का यह देवालय दैत्यों ने एक ही रात में खड़ा किया था और उसकी रक्षा के लिए ये दो दैत्य यहां अनादि काल से खड़े हैं।

मणि-मंडप से अन्दर जाने पर सामने ही एक दरवाज़ा दिखाई देता है, जिसपर चांदी का पत्तर चढ़ा हुआ है। इसके अन्दर प्रायः पुजारी ही जाते हैं। बाहर से आनेवाले दर्शकों को इसी दरवाजे में से माता महालक्ष्मी के दर्शन करने होते हैं। इस दरवाजे तक सब कोई जा सकते हैं—वे हरिजन हों या दूसरे कोई।

इस मन्दिर में बहुत बरस पहले ही हरिजनों को प्रवेश मिल गया है।

देवी की परिक्रमा का मार्ग भी यहींपर है। पुराने जमाने में जब बिजली की बत्तियां मन्दिर में नहीं आई थीं, परिक्रमा का ज्यादातर मार्ग अंधेरे से भरा होता था, जिसमें जाते हुए डर लगता था। पर अब बिजली के आ जाने से परिक्रमा करना बहुत आसान हो गया है।

महालक्ष्मी की सुन्दर मूर्ति

आदिमाया महालक्ष्मी की काले पत्थर की सुन्दर मूर्ति देखकर दर्शक का मन प्रसन्न हो जाता है। यह मूर्ति तीन फुट ऊंचे आसन पर खड़ी है। वह लगभग चार फुट ऊंची है। उसके चार हाथों में से दाहिनी ओर के आगे बढ़े हुए हाथ में मातुलुंग नाम का फल है, जो नीबू की तरह का नारियल जितना बड़ा खुरदरा और खट्टा फल होता है। पीछे के हाथ में उसने नीचे रक्खी हुई गदा पकड़ी है। बाईं ओर के आगे बढ़े हुए हाथ में (पानी) पीने का बर्तन और ऊपरवाले हाथ में ढाल है। देवी के सिर पर मुकुट और उसपर योनि-सहित लिंग है। मूर्ति के पीछे सिंह और नाग की तरह का प्रभा-वलय है। मूर्ति का मुख प्रसन्न और साथ ही गंभीर है, मानो संसार की चिंता का बोझ

वह हँसते हुए अपने सरि पर उठाये हुए हैं। इस मूर्ति का निचला बायां हाथ सन १९१७ ईसवी में अभिषेक का लोटा उसपर गिर आने से टूट गया था। उसे सन १९५५ में जोड़ दिया गया और समूची मूर्ति को वज्रलेप किया गया, जिससे वह कभी न टूटने पाये।

महालक्ष्मी (खुली मूर्ति)

यहांपर यह याद रखना चाहिए कि कोल्हापुर की यह महालक्ष्मी न तो विष्णु भगवान् की पत्नी लक्ष्मी ही है और न शिवजी की पार्वती ही। वह तो आदिमाया, आदिमाता है, जो संसार की उत्पत्ति का कारण बनी हुई है। इसी आदिमाता ने श्री विष्णु को महालक्ष्मी, शिवजी को महाकाली और ब्रह्मा को

सूर्य-किरणों का मन्दिर में प्रवेश

महालक्ष्मी का यह मन्दिर इतना बड़ा है कि इसके अन्दर सूरज की किरणें पहुंच नहीं सकतीं। इसलिए दिन में भी उसमें अंधेरा रहता है। मगर मन्दिर बनानेवालों ने एक खूबी उसमें रक्खी है। साल में जब सूरज ठीक पूरब में निकलकर पश्चिम में डूबता है तो उस दिन शाम को न जाने कहां से सूरज की किरणें सीधे महालक्ष्मी के मुख पर आकर पड़ती हैं और उसे चमका देती हैं। माघ महीने के शुक्ल पक्ष में तीन दिन तक सूर्यास्त के समय सूरज की किरणें अम्बाजी के मुख पर पड़ती हैं और देवी के चरण छूकर सूरज भगवान् डूब जाते हैं। इस अवसर पर कई भक्त महालक्ष्मी की आरती करते हैं।

कुछ लोक-कथाएं

कोल्हापुर को 'दक्षिण काशी' क्यों कहा जाने लगा, इस बारे में यहां के लोगों में कुछ कथाएं प्रचलित हैं। उनमें से एक-दो हम यहां देते हैं।

एक बार सब देवताओं ने यह निश्चित किया कि अपनी एक सभा कोल्हापुर में की जाय। उस सभा में सम्मिलित होने के लिए भगवान् शिवजी माता पार्वती को साथ लेकर कैलास से निकले। सुबह होने से पहले उन्हें कोल्हापुर पहुंच जाना था। पर बीच में

ही शिवजी को गांजे का दम लगाने की इच्छा हुई। अभी काफी रात बाकी थी और शिवजी कोल्हापुर से तीन मील इधर वडणगे गांव तक पहुंच गये थे। इस-लिए उन्होंने सोचा कि एक कश लगाने में क्या हर्ज है ? पर यहां आग कहां से आती ? इसलिए शिवजी गांव के अन्दर आग लाने चले गए और पार्वतीजी गांव के बाहर उनकी राह देखती रहीं।

शंकरजी ने गांव में जाकर आग ले ली और वह गांजे का दम लगाने लगे तो उसमें ऐसे मस्त हो गये कि उनकी सारी सुधबुध खो गई। उन्हें समय का कोई ध्यान ही न रहा। इतने में मुर्गे ने बांग देकर बताया कि चलो, उठो, सवेरा हो गया। सुबह हो जाने पर देवता लोग चलने-फिरने लगें तो आदमी उन्हें देख लेंगे, इसलिए वे रात को ही चलते हैं।

इस तरह सुबह हो जाने पर शिवजी वडणगे गांव में ही रह गये और पार्वती गांव के बाहर। अगर शिवजी उस दिन कोल्हापुर पहुंच जाते तो कोल्हापुर ही असली काशी बन जाती। फिर भी शिवजी इतने पास पहुंच गये थे, इसलिए कोल्हापुर दक्षिण की काशी कहलाया।

दूसरी लोक-कथा इस तरह है :

एक बार काशी के विश्वेश्वर बाबा और कोल्हा-

पुर की महालक्ष्मी में इस बात पर विवाद छिड़ गया कि उनमें से बड़ा क्षेत्र कौन-सा है। जब उनमें समझौता न हो सका तो ये भगवान् विष्णु के पास जा पहुंचे। भगवान् विष्णु ने एक बड़ी तराजू ली और उसके एक पलड़े में काशी को रखकर दूसरे पलड़े में कोल्हापुर को रखा। जब तराजू को ऊपर उठाया गया तो कोल्हापुरवाला पलड़ा भारी पाया गया। जब शिवजी ने यह देखा तो वह काशी छोड़कर कोल्हापुर में आ बसे। तबसे कोल्हापुर को दक्षिण की काशी कहा जाने लगा।

ये तो लोक-कथाएं हैं। इनका मतलब इतना ही है कि जो लोग दूरी की वजह से काशी तक नहीं पहुंच सकते थे, उन्होंने अपने मन को बहलाने के लिए यह सोच लिया कि कोल्हापुर ही काशी है और भगवान् विष्णु काशी में शिवजी के रूप में रहते हैं तो कोल्हापुर में शक्ति या महालक्ष्मी के रूप में। इससे तो यही सिद्ध होता है कि काशी के प्रति आम लोगों में कितनी गहरी श्रद्धा है।

त्र्यंबुली का मन्दिर

इस महालक्ष्मी के बाद सबसे अधिक महत्व का मन्दिर त्र्यंबुली का है, जिसे आम लोग टेंबलाई कहते हैं। कोल्हापुर से डेढ़ मील पूरब में एक छोटी-सी

पहाड़ी पर इस त्र्यंबुली देवी का मन्दिर है। यहां की प्राकृतिक शोभा बड़ी ही मनोहर है।

इस देवी के बारे में भी कुछ लोक-कथाएं हैं।

एक कथा है कि त्र्यंबुली महालक्ष्मी की छोटी बहन है और उसने कोलासुर को मारने में अपनी बड़ी बहन की काफी मदद की थी। पर किसी अवसर पर महालक्ष्मी से उसका कुछ अपमान या अनादर हुआ, इसलिए वह रूठकर शहर से दूर जा बैठी। तब महालक्ष्मी ने उसके पास आकर समझाया कि उसने जो कुछ किया था, उसमें त्र्यंबुली का अपमान करने का उसका इरादा नहीं था। फिर भी त्र्यंबुली वहीं रही। इसपर महालक्ष्मी ने उससे कहा कि नवरात्रि के दिनों में आश्विन सुदी पंचमी के दिन वह स्वयं छोटी बहन से मिलने शहर के बाहर आयगी। तब जाकर त्र्यंबुली देवी का क्रोध ठण्डा पड़ा।

नवरात्रि के दिनों में त्र्यंबुली के मन्दिर में भी बड़ा उत्सव रहता है और पंचमी के दिन महालक्ष्मी त्र्यंबुली से मिलने जाती है। उसकी पालकी के साथ कोल्हापुर के महाराजा भी वहांतक अपने दलबल के साथ पैदल जाते हैं।

दूसरी एक कहानी यों है। भार्गव और विशालाक्षी ने अपनी बेटी को महालक्ष्मी की सेवा के लिए

समर्पित किया था। महालक्ष्मी ने उसकी नियुक्ति मल्याल तीर्थ की रखवाली के लिए कर दी थी, जिसमें सोने के कमल खिलते थे। एक बार पाताल के राक्षसों ने आकर ये कमल चुरा लिये तो महालक्ष्मी की इस दासी ने उस तालाब में तीन बार डुबकी लगाकर राक्षसों का नाश किया और चुराये गए कमल वह वापस ले आई। इसपर महालक्ष्मी ने खुश होकर उस दासी को देवी बना दिया और उसके लिए अलग मन्दिर बनवाकर उसका नाम त्र्यंबुली रखा।

एक और लोककथा इस प्रकार है—

कोलासुर के नाश के बाद उसका और एक बेटा कामाक्ष क्रुद्ध होकर दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य के पास चला गया और उनसे उसने महालक्ष्मी से बदला लेने का उपाय पूछा। शुक्राचार्य ने उसे एक जादू का डंडा दिया, जिसे दाहिनी ओर से बाईं ओर घुमाने पर देवता या मनुष्य भेड़ बन जाते थे और बाईं ओर से दाहिनी ओर घुमाने पर भेड़ बने हुए देवता या आदमी फिर से देवता या आदमी बन जाते थे।

यह डंडा लेकर कामाक्ष कोल्हापुर चला गया और उसके बल पर उसने महालक्ष्मी के साथ वहाँ के सब देवताओं और आदमियों को भेड़ बना दिया। पर उसे त्र्यंबुली का पता नहीं था। जब त्र्यंबुली को इस घटना

की खबर मिली तो वह एक ग़रीब बुढ़िया का रूप धरकर शहर में पहुंची। उसके पास एक बड़ा टोकरा था, जिसमें नीचे तो बहुत भारी पत्थर भरे हुए थे और ऊपर उपले थे। वह टोकरा जमीन पर रखकर वह कामाक्ष की राह देखने लगी। जब कामाक्ष वहां से गुजरा तो त्र्यंबुली ने उससे प्रार्थना की कि वह उस टोकरे को उठाने में उसकी मदद करे। जब कामाक्ष ने वह टोकरी उठाई तो झट-से त्र्यंबुली ने वह कामाक्ष के सिर पर दे मारी, जिससे वह तुरन्त मर गया। तब त्र्यंबुली ने उसका जादू का डंडा बाईं तरफ से दाहिनी तरफ़ घुमाकर सारे देवताओं को फिर से देवता और मनुष्यों को मनुष्य बना दिया।

दूसरे मन्दिर

ऊपर के दो मन्दिरों के अलावा और भी बहुत सारे मन्दिर इस दक्षिण काशी में मौजूद हैं। उनमें से पद्मालय तीर्थ के पास का विट्ठल मन्दिर श्री महालक्ष्मी के मन्दिर के जितना ही पुराना है। उसके अन्दर पांच दूसरे मन्दिर और एक बड़ी धर्मशाला है। मन्दिर का महाद्वार ऊंचा और आलीशान है।

कोल्हापुर के दक्षिण में पांच मील पर बारलिंगे गांव के पास एक पहाड़ी पर देवी कात्यायनी का मंदिर भी बहुत मशहूर है। 'करवीर माहात्म्य' में कहा

रहा है।

शहर से सटा हुआ रंकाला (रंकालय) तालाब हवाखोरी की एक बढ़िया जगह है। महालक्ष्मी का एक सेवक रंक नामक भैरव था, उसीका नाम इस तालाब को मिला। लोककथा है कि रंक का सोने का मन्दिर इस तालाब के अन्दर है। असल में वहां एक बड़ा-सा गढ़ा था, जिसमें से पत्थर निकाले जाते थे। बाद में आठवीं सदी में वहां भूकंप आ जाने से इतना बड़ा तालाब बन गया। सन् १८८३ ईसवी में उसे और बढ़ाया गया और उससे पचीस साल बाद ढाई लाख रुपये खर्च करके उससे बड़ी दीवार बनाई गई। इसके पश्चिम में शालिनी पैलेस नाम की एक नई और शानदार इमारत है, जिसकी छाया तालाब में बड़ी भली मालूम होती है। तालाब के अन्दर 'सन्ध्या मठ' नाम की एक पुरानी छोटी-सी पत्थर की इमारत है। शायद वहांपर ब्राह्मण लोग सुबह-शाम सन्ध्या करते रहे हों।

इस तालाब के पास पूरब की तरफ़ एक बड़ा-सा नंदी है। इसके बारे में यह कहा जाता है कि वह हर साल एक गेहूं आगे बढ़ता है और एक तिल पीछे हटता है। कुछ लोगों की यह श्रद्धा या धारणा है कि जब इस गति से यह नंदी रंकाला तालाब में

आ गिरेगा, उसी समय इस दुनिया में प्रलय हो जायगा।

रंकाला तालाब का घेरा लगभग तीन मील है और उसकी गहराई पैंतीस फुट है। तैरनेवालों के लिए यह एक बड़ा आकर्षण है।

कोल्हापुर से तीन मील दूर कलंबा नाम का तालाब है, जिसमें से सन १८८१ इसवी से शहर को पानी मिल रहा है।

कोल्हापुर जिस पंचगंगा नदी के किनारे बसा हुआ है, उसका घाट भी देखने योग्य है। कोल्हापुर के चित्रकारों के लिए यह बड़े महत्व का स्थान है, क्योंकि यहां की प्राकृतिक शोभा दिल को मोह लेनेवाली है।

नदी के किनारे पर उत्तरेश्वर का पुराना मंदिर है। उसमें शिवजी का जो लिंग है, उसकी पिंडी लगभग छः फुट ऊंची है। न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानडे इस बस्ती में कुछ दिन रहे थे और उन्होंने इस मन्दिर की पूजा के लिए कुछ पैसा भी छोड़ रक्खा है।

इस तरह दक्षिण की काशी मन्दिरों से भरी हुई है। मन्दिरों के अलावा यहां की और भी कुछ चीजें मशहूर हैं। यहां के पहलवान सारे भारत में जाने-माने हैं। यहां के स्टूडियों के कारण फिल्मी दुनिया में भी कोल्हापुर का नाम मशहूर है। छत्रपति शिवाजी महा-राज के वंशज यहां राज करते थे और आज भी

उनकी पूजा में शिवाजी महाराज के हाथ का पंजा रक्खा हुआ है। इस पंजे का इतिहास इस प्रकार है :

जब शिवाजी महाराज ने मालवण के पास 'सिन्धु दुर्ग' नाम का किला बनवाना शुरू किया था तो वह बीच-बीच में उसका काम देखने जाते थे। एक बार जब वह वहां गये तो किले के बड़े बुर्ज का काम चल रहा था। बुर्ज पर चढ़ते समय महाराज ने योंही एक जगह हाथ रक्खा तो वहां के गीले चूने में उनके पंजे के निशान हो गये। बाद में जब वह चूना सूख गया तो वहां धातु का रस डालकर महाराज की यादगार के तौर पर एक पंजा बनवा लिया गया। आगे चलकर वह पंजा टूट गया, तब श्री शाहू महाराज ने उसीकी मदद से चांदी का पंजा बनवा लिया।

यहां का पुराना राजवाड़ा (राजमहल) देखने लायक है, जो श्री महालक्ष्मी के मन्दिर के पास ही है। इसका नक्कारखाना पांचमंजिला है। इसपर चढ़ने से सारा शहर साफ़ दिखाई देता है। इसके दीवानखाने के खंभे इतने चिकने हैं कि उनमें हम अपना प्रतिबिंब देख सकते हैं।

इस तरह की कई चीजें इस शहर में देखने को मिलती हैं। आज के दौड़-धूप के ज़माने में भी कोल्हापुर के कारीगर अपनी कारीगरी के नमूने पेश करके देखने-वालों को चकित कर देते हैं।

यहां के राजाओं ने शिक्षा और सुधार के बहुत-से काम किये हैं, जिनका असर सारे महाराष्ट्र पर पड़ा है। महादेव गोविन्द रानडे और गोपालकृष्ण गोखले जैसे महान् नेताओं को प्रारम्भिक शिक्षा देने का श्रेय इसी दक्षिण काशी कोल्हापुर को है। आज यह शहर पुराने और नये संस्कारों का संगम बना हुआ है। विज्ञान के इस युग में भी श्री महालक्ष्मी के भक्तों की संख्या घटने के बजाय बढ़ती ही जा रही है।

●

कालटी

: १ :

हरी-भरी कालटी

सन् १९५७ की बात है।

अखिल भारत सर्वोदय समाज का नौवां सम्मेलन केरल राज्य के कालटी शहर में बड़ी धूमधाम से हुआ था। हमारे गांव के मुखिया पण्डित सरयूप्रसादजी उस सम्मेलन में शरीक होकर वापस लौटे थे। हम लोग उनसे सम्मेलन का तथा उस तीर्थ का हाल सुनने के लिए बड़े उत्सुक थे, इसलिए रात को उन्हें घेरकर बैठ गये।

बातें शुरू हुईं।

"क्यों पंडितजी, इस साल का जलसा बहुत दूर हुआ! आप वहां कैसे पहुंचे?" धनीराम ने पूछा।

पंडितजी ने भारत का नक्शा निकाला और उसे दिखाते हुए बोले, "हां भई, बहुत दूर का सफर करना पड़ा इस साल। हमारा देश कोई छोटा थोड़े ही है!

इतने बड़े देश के रहनेवाले हैं हम। इसलिए इस कोने से उस कोने तक पहुंचने में कई दिन लग जायं तो अचरज की क्या बात है? हम दिल्ली से ग्रांड ट्रंक एक्सप्रेस में बैठे और सीधे मद्रास पहुंचे। मद्रास में हमने गाड़ी बदली और आलारपेट, कोयम्बटूर, शोरनूर होते हुए अंगमाली गये। अंगमाली मद्रास से कोई चार सौ मील दूर बिलकुल पच्छिम में है। यहां से चार मील की दूरी पर कालटी शहर बसा हुआ है।"

"मेरी समझ में नहीं आता कि सारे भारत का सम्मेलन इतनी दूर एक कोने में क्यों रखा गया था?" लछमन ने सवाल किया।

"बात यह है, लछमनभैया", पंडितजी कहने लगे, "सारा देश तो अपना ही है। कुछ लोगों के लिए कोई जगह दूर पड़ती है तो कुछ के लिए वही पास भी होती है। अगर पंजाब में सम्मेलन हो तो केरल के लोगों के लिए वह बहुत दूर पड़ेगा, मगर पंजाबवालों के लिए तो बहुत नजदीक होगा। क्यों, है न?"

"सच्ची बात है, पंडितजी। मगर आपने यह नहीं बताया कि आखिर कालटी को ही चुनने का क्या कारण था?" रामसिंह ने पूछा।

"हां-हां, खास वजह तो थी ही। आप लोगों ने

जगद्गुरु शंकराचार्य का नाम सुना है ?" पंडितजी ने पूछा।

"नाम ही क्यों, हमने तो उनकी जीवनी भी पढ़ी है। हिन्दू धर्म को गिरी हुई हालत से ऊपर उठाने का काम करनेवाले वह बहुत बड़े महात्मा थे।" मास्टर बलवीरसिंहने कहा।

"बिलकुल ठीक कहा आपने, मास्टरजी। उन्हीं शंकराचार्य का जन्म इस कालटी शहर में हुआ था। वैसे यह बड़ा शहर नहीं है, लेकिन शंकराचार्य की जन्मभूमि होने के कारण उसका बड़ा महत्त्व है।" पंडितजीने कहा।

"सुना है, वहां के प्राकृतिक दृश्य भी बहुत सुंदर हैं।" विष्णुराम ने कहा।

"हां, प्राकृतिक दृश्य तो बहुत ही सुन्दर हैं। वैसे सारा केरल प्रदेश ही कुदरती नजारों से भरा हुआ है। जहां जाइये, वहां आपको नारियल, सुपारी, ताड़, केले, काजू, कटहल आदि के बागान फैले हुए दिखाई देते हैं। हम लोग गर्मी के दिनों में वहां गये थे, मगर चारों ओर हरा-भरा था। हरियाली के कारण गर्मी तो महसूस ही नहीं होती थी। कालटी में तो हरे-भरे पेड़-पौधों और धान के लहलहाते खेतों के कारण

इतने बड़े देश के रहनेवाले हैं हम। इसलिए इस कोने से उस कोने तक पहुंचने में कई दिन लग जायं तो अचरज की क्या बात है ? हम दिल्ली से ग्रांड ट्रंक एक्सप्रेस में बैठे और सीधे मद्रास पहुंचे। मद्रास में हमने गाड़ी बदली और जालारपेट, कोयम्बटूर, शोरनूर होते हुए अंगमाली गये। अंगमाली मद्रास से कोई चार सौ मील दूर बिलकुल पच्छिम में है। वहां से चार मील की दूरी पर कालटी शहर बसा हुआ है।"

"मेरी समझ में नहीं आता कि सारे भारत का सम्मेलन इतनी दूर एक कोने में क्यों रखा गया था ?" लछमन ने सवाल किया।

"बात यह है, लछमनभैया", पंडितजी कहने लगे,"सारा देश तो अपना ही है। कुछ लोगों के लिए कोई जगह दूर पड़ती है तो कुछ के लिए वही पास भी होती है। अगर पंजाब में सम्मेलन हो तो *केरल के लोगों के लिए वह बहुत दूर पड़ेगा, मगर पंजाबवालों के लिए* तो बहुत नजदीक होगा। क्यों, है न ?"

"सच्ची बात है, पंडितजी। मगर आपने यह नहीं बताया कि आखिर कालटी को ही चुनने का क्या कारण था ?" रामसिंह ने पूछा।

"हां-हां, खास वजह तो थी ही। आप लोगों ने

जगद्गुरु शंकराचार्य का नाम सुना है ?" पंडितजी ने पूछा।

"नाम ही क्यों, हमने तो उनकी जीवनी भी पढ़ी है। हिन्दू धर्म को गिरी हुई हालत से ऊपर उठाने का काम करनेवाले वह बहुत बड़े महात्मा थे।" मास्टर बलबीरसिंहने कहा।

"बिलकुल ठीक कहा आपने, मास्टरजी। उन्हीं शंकराचार्य का जन्म इस कालटी शहर में हुआ था। वैसे यह बड़ा शहर नहीं है, लेकिन शंकराचार्य की जन्मभूमि होने के कारण उसका बड़ा महत्त्व है।" पंडितजीने कहा।

"सुना है, यहां के प्राकृतिक दृश्य भी बहुत सुंदर हैं।" विष्णुराम ने कहा।

"हां, प्राकृतिक दृश्य तो बहुत ही सुन्दर हैं। वैसे सारा केरल प्रदेश ही कुदरती नजारों से भरा हुआ है। जहां जाइये, वहां आपको नारियल, सुपारी, ताड़, केले, काजू, कटहल आदि के बागान फैले हुए दिखाई देते हैं। हम लोग गर्मी के दिनों में यहां गये थे, मगर चारों ओर हरा-भरा था। हरियाली के कारण गर्मी तो महसूस ही नहीं होती थी। कालटी में तो हरे-भरे पेड़-पौधों और धान के लहलहाते खेतों के कारण

बड़ा अच्छा लगता है। वहां की पूर्णा या पेरियार नदी में बारहों महीने पानी बहता रहता है। छोटी-मोटी नहरों के जरिए यह पानी आसपास के खेतों में पहुंचाया जाता है, जिससे साल-भर में तीन-चार बार फसलें पैदा की जाती हैं। हम आगे चलकर बतायेंगे कि इस नदी के कारण इस जगह की सुंदरता कितनी बढ़ गई है और उसका घाट यात्रियों को कितना आनंद देता है।"

: २ :

कालटी के मंदिर

"सुना है, दक्षिण में बहुत बड़े-बड़े मंदिर होते हैं और उनके गोपुर आसमान से बातें करते हैं। क्या कालटी में भी ऐसे बड़े मंदिर हैं ?" मास्टर बलवीर-सिंह ने पूछा।

"नहीं मास्टरजी ! कालटी के मंदिर दक्षिण भारत के दूसरे मंदिरों के मुकाबले में बहुत ही छोटे हैं। हां, हमारे यहां के मंदिरों से ये जरूर बड़े हैं। वहां की पेरियार नदी के किनारे पर जो तीन विशेष मंदिर हैं, वे तीनों छोटे ही हैं। उनमें एक है श्रीकृष्ण भगवान का, दूसरा है शंकराचार्य का और तीसरा है शारदा माता का। तीनों बिलकुल सीधे-सादे मंदिर हैं। नक्काशी, पच्चीकारी, पत्थरों में खोदी हुई तस्वीरें, कुछ भी इन मंदिरों में नहीं है।"

"ठीक भी तो है पंडितजी। शंकराचार्य महाराज तो संसार-त्यागी संन्यासी थे। उनके मंदिरों में तड़क-भड़क भला क्या शोभा देती !" बाबा गिरधारीदास

ने कहा।

"वहां के कृष्ण भगवान के मंदिर में क्या खास बात है?" मैंने पूछा।

पंडितजी बोले, "खास बात यह है कि शंकरा-

शंकराचार्यजी का मंदिर
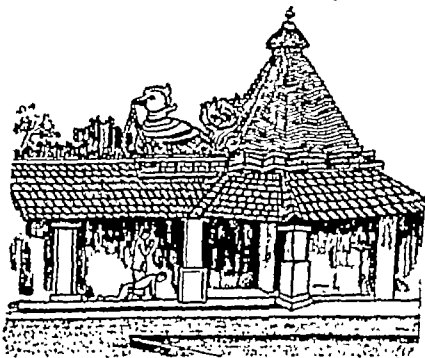
चार्य महाराज को उनके घर के पास ही नदी में कृष्ण की एक मूर्ति मिली थी। उस मूर्ति को वहां से निकाल-कर शंकराचार्य ने उसपर एक छोटा-सा मंदिर बनवाया। वही मंदिर अब काफी बड़ा बन गया है।

शंकराचार्य श्रीकृष्ण की पूजा-उपासना करते थे। इस विचार से इस मंदिर का बड़ा महत्त्व है। तिरुविताकुर (ट्रावनकोर) रियासत के भूतपूर्व दीवान सर वी० पी० माधवराव ने इस मंदिर के पास ही शंकराचार्य की इष्ट-देवी शारदा माता (सरस्वती) का मंदिर खड़ा करवा दिया। सन् १९१० के माघ महीने में शुक्ला द्वादशी के दिन मैसूर राज्य के शृंगेरी मठ के आचार्य स्वामी नरसिंह भारती ने इन दो मंदिरों में मूर्तियों की प्राण-प्रतिष्ठा की।

"इन दो मंदिरों के बीच में शंकराचार्य की माता आर्याम्बा का एक वृन्दावन है। आर्याम्बा का दाह-कर्म जिस स्थान पर हुआ था, उसी जगह यह पक्का वृन्दावन बना हुआ है।"

"यह तो वही माताजी थीं न, जिनका दाह-संस्कार करने के लिए दूसरे ब्राह्मण और शंकराचार्य के नातेदार इसलिए नहीं आये थे कि संन्यासी को दाह-संस्कार करने का अधिकार नहीं था? और शंकराचार्य अपनी माताजीका दाह-संस्कार करने पर तुले हुए थे?" सीता-चरणजी ने पूछा।

"जीहां, उन्हीं माताजी की यह समाधि है। उनके दाह संस्कार के बारे में हमने वहां और एक कहानी

सुनो, जिसका जिक्र विनोबाजी ने अपने एक भाषण में किया था !" पंडित सरयूप्रसाद ने कहा ।

"अच्छा, और भी कोई कहानी है? जरूर सुनाइये, पंडितजी ।" सब जने एक साथ बोल पड़े ।
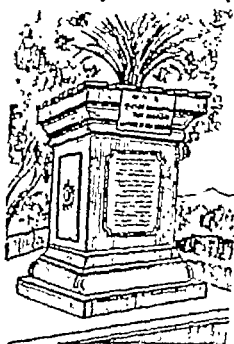
शंकराचार्यजी की माता का वृंदावन

"कहानी इस तरह है :

"जब शंकराचार्यजी की माताजी बहुत बीमार हुईं तो वह उनके दर्शन के लिए कालटी चले गये । यह बात वहां के ब्राह्मणों और शंकराचार्य के रिश्तेदारों को अच्छी नहीं लगी, क्योंकि जब कोई आदमी संन्यासी

बन जाता है तो फिर घर के लोगों के साथ उसका संबंध नहीं रहता। इसलिए सब लोगों ने शंकराचार्य का बहिष्कार कर दिया। बाद में जब आर्याम्बा का देहांत हुआ तो एक भी ब्राह्मण उनके यहां नहीं आया। अकेले शंकराचार्य उस शरीर को भला कैसे उठा सकते थे ? तब उन्होंने उस शरीर को काटकर उसके तीन टुकड़े किये और नदी के किनारे ले जाकर उनका दाह-संस्कार किया।

"इसके बाद जब शंकाराचार्य का बड़प्पन यहां के ब्राह्मणों को मालूम हुआ तो वे बहुत पछताये और उन्होंने प्रायश्चित के रूप में यह तय किया कि अपनी जाति के लोगों के मृत शरीर पर दो रेखाएं खींचकर उसके तीन टुकड़े बनाये जाने का आभास करावें और तब दाह-संस्कार करें। सुनते हैं, आज भी केरल के नंबूद्री (नम्पूतिरि) ब्राह्मणों में यह रिवाज चालू है।"

यह कहानी सुनकर लोग थोड़ी देर तक चुप रहे।

फिर गिरधारी बाबा ने पूछा, "आपने जिन मंदिरों की चर्चा की है, उनके अलावा और भी तो मंदिर यहां होंगे ?"

"हैं क्यों नहीं। हमारे देश में शहरों में ही नहीं,

छोटे-बड़े गांवों में भी कई-कई मंदिर होते हैं। कालटी में भी कई मंदिर हैं, मगर उनमें खास महत्त्व के कुछ ही मंदिर हैं। कालटी के उत्तर में एक मील की दूरी पर माणिक्कमंगलम् नाम का एक मंदिर है। इस मंदिरमें दुर्गा की मूर्ति है। जगद्गुरु शंकराचार्य के पिता शिव-गुरु इस मंदिर के पुजारी थे। कहते हैं, शंकराचार्य के माता-पिता दक्षिण के प्रसिद्ध तीर्थ चिदम्बरम् की यात्रा के लिए गये थे। वहां भगवान शंकर ने उन्हें दर्शन दिये और कहा, "मैं तुम लोगों के यहां जन्म लूंगा।" इसके बाद वह कालटी लौटे। एक दिन शिवगुरु दुर्गा का रुद्राभिषेक कर रहे थे। वह 'नमस् शंकराय' बोले ही थे कि उनके यहां बच्चे का जन्म होने की खबर उन्हें मिली। इसलिए उस बच्चे का नाम शंकर रखा गया, जो आगे चलकर आद्य शंकराचार्य के नाम से मशहूर हुआ। इस सारे इतिहासके कारण माणिक्कमंगलम् के इस मंदिर की बड़ी मान्यता है। मैंने यह सारा इतिहास पहले ही पढ़ रखा था, इसलिए उस मंदिर में जाने पर मुझे ऐसा लगा, मानो शंकराचार्य के बूढ़े पिता शिवगुरु रुद्राभिषेक कर रहे हैं और रुद्र के श्लोक ऊंची आवाज में बोल रहे हैं।

"इस मंदिर में दुर्गा की मूर्ति के पीछे एक छोटा-

सा दीया हमेशा जलता रहता है। उसकी लौ की झलक सोलह नन्हे-नन्हे आईनों में बड़ी भली लगती है।

"इनके अलावा और भी एक शिवालय वहां है, जिसे वहां के लोग 'वेल्लिमान तुल्लि' कहते हैं। वेल्लि-मान तुल्लि का मतलब है वह जगह, जहां सफ़ेद हिरन कूदा था। लोगों की मानता है कि एक बार उस जगह पर एक सफ़ेद हिरन दिखाई दिया था, जिसका मतलब था कि वहां कहीं शिव-लिंग छिपा हुआ है। लोगों ने खोज की तो शिवलिंग मिल गया। फिर तो एक अच्छा-सा मंदिर बनाया गया। कहते हैं, शंकरा-चार्य की माता आर्याम्बा देवी बहुत बूढ़ी हो गईं और तिरु-शिव-पेरूर[1] जैसे क्षेत्रों की यात्रा करना उनके लिए कठिन होने लगा। तब भगवान ने उन्हें आदेश दिया कि वे दूर न जाकर इसी 'वेल्लिमान तुल्लि' मंदिर के शिवलिंग की पूजा करती रहें। इसलिए बुढ़ापे के दिनों में वे इसी मंदिर में आती थीं।"

"क्यों पंडितजी, कालटी में क्या सिर्फ़ हिन्दुओं के ही मंदिर हैं?" गुलाम रसूल ने पूछा।

"नहीं भाई, जब हमारे देश में सब धर्मों के लोग बसते हैं तब यह कैसे हो सकता है कि कालटी-जैसी

१. शिवजी का बड़ा शहर। इसी को आजकल त्रिचूर कहते हैं।

जगह में दूसरे धर्मों की पूजा का बंदोबस्त न हो। यहां कई गिरजाघर हैं, मस्जिद हैं, दूसरे मंदिर हैं। इन सबको बड़ी मानता है। उनमें दर्शन-पूजा करने के लिए काफ़ी लोग आते रहते हैं। पर मैंने तो यहां बस ख़ास-ख़ास मंदिरों का ही ज़िक्र किया है।" पंडितजी ने कहा।

: ३ :

नदी का सुंदर घाट

"मंदिरों के अलावा कालटी में और भी कुछ देखने योग्य है ?" सत्यपाल ने पूछा ।

"हां जी, बहुत-सी चीजें देखने की हैं । वहां की पेरियार नदी को ही लो । इस नदी-जैसा सुंदर घाट शायद ही कहीं देखने को मिलेगा । यह घाट माता आर्याम्बा की समाधि से बिलकुल सटा हुआ है । घाट पर खड़े होकर सामने देखते हैं तो बड़ा ही सुंदर दृश्य दिखाई देता है । मीलों तक फैले हुए नारियल, सुपारी और केलों के बागान आंखों को शीतल करते हैं । बीच-बीच में धान के हरे-भरे खेत रंग-बिरंगे कालीनों की तरह मनोहर मालूम होते हैं । यहां पर नदी का पाट बहुत गहरा है और उसमें बारहों महीने पानी बहता रहता है । इस नदी के बारे में भी एक कहानी वहां के लोग सुनाते हैं ।"

"कहानी ! पंडितजी, आप तो वहां से कहानियों का भंडार ले आये हैं !" खुश होकर कइयों ने एक

साथ कहा ।

"आप लोगों के लिए भला और क्या लाता ?" पंडितजी हंसकर बोले और आगे कहने लगे, "यह कहानी यों है । पहले यह नदी कालटी से कुछ दूर पर बहती थी । इसलिए शंकराचार्य की माताजी जब बूढ़ी हो गईं तो उनके लिए उतनी दूर चलकर जाना कठिन हो गया । शंकराचार्य मां के लिए बड़ी भक्ति रखते थे । माता की यह कठिनाई उनसे नहीं देखी गई । उन्होंने तपस्या की और उसके बल पर नदी की एक धारा बिलकुल उनके घर के पास से बहने लगी । तब से यह नई धारा मुख्य नदी बन गई । असल नदी छोटी बन गई । हमने देखा, गर्मियों के दिनों में असली नदी तो सूख गई थी, मगर इस शंकराचार्य वाली धारा में काफी पानी था ।"

"मुझे ऐसा लगता है पंडितजी, कि शंकराचार्यने तपस्या से यह धारा नहीं बहाई होगी, बल्कि लोगों से श्रमदान कराके यह नहर निकाली होगी । हम लोग भी तो आजकल बड़ी-बड़ी नहरें निकालते हैं ।" मास्टर बलबीरसिंह ने कहा ।

"हां, हो सकता है, मास्टरजी ! कालटी से दो मील ऊपर की ओर यह पूर्णा या पेरियार नदी दो

धाराओं में बंट जाती है और कालटी से दो मील नीचे की ओर ये दोनों धाराएं एक-दूसरी में मिल जाती हैं। बरसात के दिनों में दोनों धाराएं लबालब भर जाती हैं। कहते हैं, जाड़े के दिनों में कालटी के पास से बहने वाली धारा पर सफ़ेद बादल हवा में तैरते हुए बड़े भले मालूम होते हैं।"
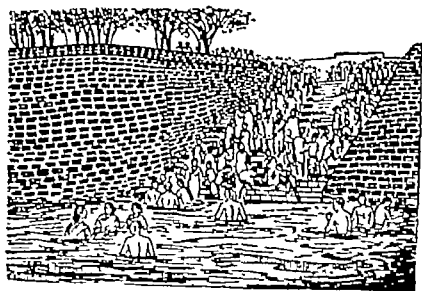
पूर्णा नदी में सज्जन नहा रहे हैं।

"पंडितजी, आपको उस नदी में कोई घड़ियाल दिखाई दिया था?" लछमन ने हंसकर पूछा।

"शायद तुम उस घड़ियाल की बात पूछ रहे हो, जिसने जगद्गुरु शंकराचार्य का नहाते समय पैर पकड़ा था और आर्याम्बा के शंकर को संन्यासी बनने की इजाजत

देनेपर जिसने उनका पैर छोड़ दिया था।" पंडितजीने हंसकर कहा, "भैया, हमको तो कोई घड़ियाल या मगरमच्छ दिखाई नहीं दिया। नदी में कमर तक पानी था। उसमें कोई घड़ियाल रह भी कैसे सकता है? फिर हम सैकड़ों लोग एक साथ नहा रहे थे। इतने लोगों के रहते कोई घड़ियाल कैसे सामने आ सकता है? मेरा खयाल है, उन दिनों भी इस नदी में कोई घड़ियाल नहीं रहता होगा। यहां से तीस मील पर सागर है, जिसमें यह पेरियार नदी जाकर मिलती है। हो सकता है, बरसात के दिनों में जब नदी में पानी बहुत भरा हुआ हो, सागर में से कोई छोटा-सा घड़ियाल इधर भूला-भटका आ पहुंचा हो और उसने छोटे-से शंकर का पैर पकड़ लिया हो!"

"जीहां, ऐसा ही हुआ होगा! लेकिन मगर छोटा हो या बड़ा, आदमी का पैर पकड़ लेता है तो यह मामूली बात नहीं होती।" सबने मिलकर कहा।

"सो तो है। पर पता नहीं, ठीक-ठीक क्या बात थी। जो हो, हम लोग जब उस नदी के साफ-सुथरे पानी में नहा रहे थे तो हमारे मन में भी यह घड़ियाल-वाली घटना घूम गई और हमने उस घड़ियाल को धन्यवाद दिया, जिसके कारण सारे संसार को शंकर

का संदेश सुनानेवाले जगद्गुरु शंकराचार्य मिले !" पंडितजी ने कहा ।

"सो कैसे ?" लछमन ने पूछा ।

पंडितजी ने जवाब दिया, "कहते हैं, जब बालक शंकर को मगर ने पकड़ लिया और छूटने का कोई उपाय न रहा तो बालक ने मां से कहा, 'मां, मैं मर तो रहा ही हूं । आप मुझे संन्यासी बन जाने दें । उससे मोक्ष तो मिलेगा ।' मां ने बेबस होकर बेटे की बात मान ली । तभी कुछ मछुए दौड़े और उनके शोर को सुनकर मगर भाग गया । शंकर बच गये, पर संन्यासी हो गये ।"

: ४ :

श्रीरामकृष्ण अद्वैत आश्रम

"ये तो हुई पुरानी बातें। क्या कालटी में कोई नई बात भी हुई है ?" गिरधारी बाबा ने पूछा।

"हां-हां, बहुत हुई हैं, बाबाजी। मगर उनमें से सिर्फ एक की जानकारी आप लोगों को देना चाहता हूं। यह बड़ी अच्छी और काम की संस्था है। उसका नाम है श्रीरामकृष्ण अद्वैत आश्रम।

"आप लोग जानते हैं कि संसार-भर में हिन्दू धर्म और उसके वेदान्त-दर्शन का प्रचार करनेवाली एक संस्था स्वामी विवेकानंदने अपने गुरु स्वामी रामकृष्ण परमहंस की याद में शुरू की थी, जो अब भी भारत में और बाहर के देशों में हिन्दू धर्म और संस्कृति का प्रचार कर रही है। इसी संस्था के एक कार्यकर्ता स्वामी आगमानन्द सन् १९२७ में कालटी गये थे। उन दिनों कालटी की हालत बहुत बुरी थी। जगद्गुरु शंकराचार्य का यह जन्म-स्थान इतना बदल गया था कि पहचाना भी नहीं जाता था। हिन्दू धर्म का नामोनिशान तक उग

गांव से मिटता जा रहा था। सारे गांव पर ईसाइयत छाई हुई थी। यह हालत देखकर स्वामी अगमानंद के दिल को गहरी चोट लगी। उन्होंने अपने मन में निश्चय किया कि इस हालत को जरूर बदल डालना चाहिए। आगे चलकर उन्होंने स्वामी अखंडानंद और स्वामी अंबिकानंद से इस बारे में बातचीत करके कालटी में एक आश्रम खोलने का निश्चय किया और स्वर्गीय परयात गोविंद मेनन की मदद से, जिन्होंने आश्रम को एक मकान और थोड़ी जमीन दी थी, कालटी में २० अप्रैल १९३६ के दिन स्वामी त्यागीशानंद के सहयोग से अद्वैत आश्रम की स्थापना की।

"इस आश्रम को शुरू-शुरू में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पास में पैसा नहीं था, इसलिए खाने-पीने और पहनने-ओढ़ने की भी दिक्कत रहती थी। फिर भी वे लोग अपने काम में डटे रहे।

"उन्होंने सबसे पहले यहां एक संस्कृत-पाठशाला खोली, जिसमें शुरू में सिर्फ तीन छात्र थे। यह शाला आश्रम के बरामदे में ही चलती थी। आगे चलकर शाला-के लिए मकान आदि बने। मगर उसमें भी वहां के लोगों ने बहुत अड़ंगे लगाये, इसलिए आश्रम को ट्रावन-कोर की सरकार से मदद लेनी पड़ी। १९४१ के मई

महीने में यह आश्रम रामकृष्ण-मिशन के साथ बाक़ायदा जोड़ा गया।

"हिंदू धर्म के असली सिद्धांतों का आसपास की जनता में प्रचार करना इस आश्रम का खास काम बन गया। यह प्रचार केवल ज़बानी नहीं किया जाता था, बल्कि लोगों की सेवा के ज़रिए। लोगों से मिलकर उन्हें हिंदू धर्म की बातें समझाई जातीं, उसके लिए वर्ग चलाये जाते और भाषण दिये जाते। हर साल लाखों लोगों तक हिंदू धर्म का संदेश पहुंचाने का काम यह आश्रम करता था और आज भी करता है।

"सन् १९३७ में श्रीरामकृष्ण गुरुकुल शुरू हुआ। प्रकाशन-विभाग तो आश्रम के साथ ही शुरू हुआ था। सन् १९४१ में 'हरिजन-अनाथ बालक-आश्रम' को भी अपने हाथ में ले लिया गया, जिसे एक सज्जन निजी तौर पर चला रहे थे। इस तरह धीरे-धीरे इस आश्रम ने अपना काम धीरे-धीरे आगे बढ़ाया।

"सन् १९४७ में ब्रह्मानंदोदयम् हाई-स्कूल और संस्कृत मिडिल-स्कूल शुरू किये गए। सन् १९५० में ब्रह्मानंदोदयम् प्राथमिक विद्यालय शुरू हुआ। इन संस्थाओं में सभी जातियों और धर्मों के विद्यार्थी पढ़ते हैं। राज्य-सरकार के शिक्षा-विभाग के साथ ये संस्थाएं

जुड़ी हुई हैं। इस समय इनमें कुल मिलाकर लगभग ७०० विद्यार्थी पढ़ते हैं और दो दर्जन से ऊपर अध्यापक काम करते हैं।

"संस्था की तरफ़ से दो छात्रावास और दो अनाथ-बालकाश्रम भी चलाये जाते हैं। संस्था का अपना आयुर्वेदिक दवाखाना सन् १९५१ से चल रहा है, जो इस समय बढ़ते-बढ़ते आयुर्वेदिक अस्पताल का रूप ले चुका है।

"कालटी में एक कॉलेज भी चलता है, जिसका नाम 'श्री शंकर कॉलेज' है। यह सन् १९५४ से चल रहा है। वैसे तो यह कॉलेज सीधे मिशन की ओर से नहीं चलाया जाता, मगर उसके सिद्धांत और उद्देश्य वही हैं, जो अद्वैत आश्रम के हैं। अद्वैत आश्रम के अध्यक्ष ही श्रीशंकर कॉलेज एसोसियेशनके अध्यक्ष होते हैं और पढ़ानेवाले प्रोफेसर आश्रम से प्रेरणा पाते रहते हैं। यह कॉलेज ट्रावनकोर-विश्वविद्यालयसे जुड़ा हुआ है और लगभग चार सौ लड़के-लड़कियां इसमें शिक्षा पाते हैं। इस कॉलेज में साहित्य, विज्ञान, व्यापार के अलावा वेदान्त-दर्शन भी पढ़ाया जाता है। दक्षिण भारत में वेदान्त की पढ़ाई करानेवाला सिर्फ़ यही एक कॉलेज है। सर्वोदय-सम्मेलन इसी शंकर कॉलेज के

अहाते में हुआ था और कॉलेज के मकानों में खास-खास लोगों के रहने का इंतजाम किया गया था। यहां से कालटी शहर का रूप बड़ा ही सुहावना दीखता था। यह कॉलेज एक छोटी-सी पहाड़ी पर है, इसलिए कहीं भी निगाह दौड़ाओ, हरे-भरे पेड़-पौधों और लहलहाते खेतों का समुंदर-सा दिखाई देता है।

"मैं आपको अद्वैत-आश्रम के कामों के बारे में बता रहा था। जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूं, इस संस्था का प्रकाशन-विभाग शुरू से ही चलता आया है। इस विभाग की तरफ से अबतक मलयालम् भाषा में साठ किताबें निकल चुकी हैं और श्रीरामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानंद के ग्रंथों के अनुवाद अब भी तैयार किये जा रहे हैं। अद्वैत आश्रम के कायम होने से कई साल पहले श्री रामकृष्ण मिशन की ओर से 'प्रबुद्ध-केरलम्'[1] नाम की एक मासिक पत्रिका चलाई जाती थी। यह अब अद्वैत-आश्रम के प्रकाशन विभाग की ओर से चलाई जाती है।"

"बहुत ही बड़ा काम कर रहा है यह अद्वैत-आश्रम, पंडितजी। हम लोगों को भी अपने इलाके में इस तरह का काम उठा लेना चाहिए।" गिरधारी

१. जागा हुआ या प्रबुद्ध केरल।

बाबा ने कहा।

"जरूर उठा लेना चाहिए। मगर बाबाजी केवल इतना ही काम यह आश्रम नहीं करता। उसके और भी बहुत-से काम हैं। वे लोग 'स्वामी विवेकानंद धार्मिक पुस्तकालय और वाचनालय' भी चलाते हैं, जिसमें तीन हजार से ज्यादा किताबें हैं। आश्रम की ओर से श्रीशंकर जयंती और श्रीरामकृष्ण जयंती बड़ी धूमधाम से मनाई जाती है, जिसमें हजारों लोग शरीक होते हैं। ये जयंतियां चार-चार दिन तक चलती हैं। इन चार दिनों में भाषण होते हैं, कला की प्रदर्शनियां की जाती हैं और मनोरंजन के कार्यक्रम रखे जाते हैं।

"आश्रम में सुबह-शाम सामूहिक प्रार्थना होती है। बच्चों को कताई-बुनाई, जिल्दसाजी आदि दस्तकारियां सिखाई जाती हैं। इस तरह धर्म के साथ-साथ जिंदगी की जरूरतों की शिक्षा यहां दी जाती है।"

"कालटी के बारे में आपने बड़ी ही अच्छी और रोचक बातें बताईं, पंडितजी। ये ऐसी बातें हैं, जो किसी किताब में पढ़ने को नहीं मिली थीं।" मास्टर बलवीरसिंह ने कहा।

"फिर किताब में पढ़ने और कानों से सुनने में भी तो अंतर होता है। जब पंडितजी यह सब सुना रहे थे,

तो हमें ऐसा लग रहा था, मानो हम स्वयं कालटी पहुंच गए हैं और अपनी आंखों से सारी चीजें देख रहे हैं।" लक्ष्मन ने कहा।

"इसके लिए हमें विनोबाजी का आभार मानना चाहिए। उन्होंने भूदान आंदोलन चलाया और सर्वोदय सम्मेलन कालटी में कराया, इसीसे तो हमें कालटी

विनोबा भूदान-यात्रा पर

जाने और उसे देखने का मौका मिला।" पंडितजी ने कहा।

"कालटी की बातों में सम्मेलन की बातें तो छूट ही गईं, पंडितजी ।" सत्यपाल ने कहा ।

"हां भाई, मुझे उसका खयाल है । पर मैंने सोचा कि जबतक कालटी की जानकारी आपको न मिल जाय, तबतक आप लोगों का ध्यान सम्मेलन की बातें सुनने में ठीक तरह से लगेगा नहीं ।

"गांधीजी के मरने के बाद उनके भाईचारे में विश्वास रखनेवाले लोगों का एक 'सर्वोदय-समाज' बना था, उसीका हर साल सम्मेलन होता है । उसमें देश के कोने-कोने से रचनात्मक काम करनेवाले व्यक्ति इकट्ठे होते हैं और सबकी भलाई के लिए उन्हें क्या-क्या करना चाहिए, इसपर विचार करते हैं । सम्मेलन का सबसे बड़ा लाभ तो यह होता है कि इतने लोग एक जगह मिल जाते हैं और दिल खोलकर चर्चा करते हैं । जिस तरह तीरथ सबके फायदे के लिए हैं और वे आदमी-आदमीको मिलाते हैं, उसी तरह सर्वोदय-समाज और उसके सम्मेलन भी दिलों को जोड़ते हैं ।"

"यह तो बड़ी अच्छी बात है, पंडितजी । ऐसे सम्मेलन देश-भर में हों तो बहुत बड़ा काम हो, लोगों के दिल मिल जायं तो बहुत-से झगड़े अपने आप खत्म हो जायं ।" गुलामरसूल ने कहा ।

थोड़ा रुककर पंडितजी बोले, "आप ठीक कहते हैं। आज दुनिया-भर में सबसे ज्यादा जरूरत इसी चीज की है। सबके दिल मिल जायंगे तो झगड़े ही दूर नहीं होंगे, दुनिया के सारे दुख मिट जायंगे। सब सुख और आनंद से रहेंगे।"
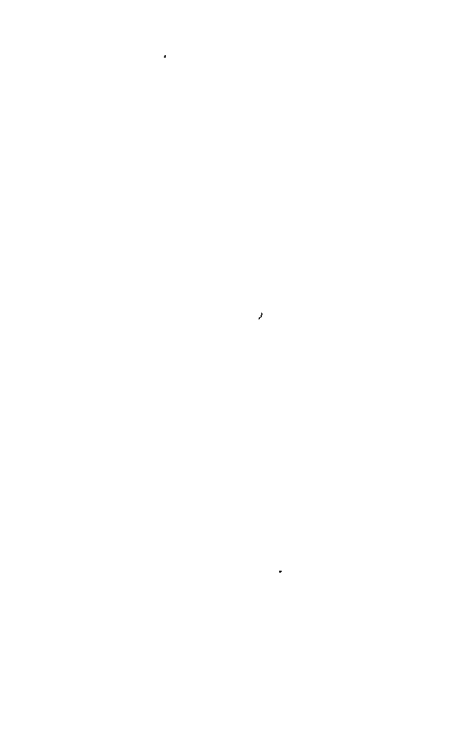
रामेश्वर मंदिर के प्रवेश-द्वार का मार्ग

रामेश्वरम्

: १ :

रामेश्वरम् हिंदुओं का पवित्र तीर्थ है। उत्तर में काशी की जो मानता है, वही दक्षिण में रामेश्वरम् की है। धार्मिक हिंदुओं के लिए वहां की यात्रा उतना ही महत्त्व रखती है, जितनी कि काशी की।

रामेश्वरम् मद्रास से कोई सवा चार सौ मील दक्षिण-पूरब में है। मद्रास से धनुषकोटी तक जानेवाली रेल-गाड़ी, यात्रियों को करीब बाईस घंटे में रामेश्वरम् पहुंचा देती है। रास्ते में पामबन स्टेशन पर गाड़ी बदलनी पड़ती है।

रामेश्वरम् एक सुंदर टापू है। हिंद महासागर और बंगाल की खाड़ी इसको चारों ओर से घेरे हुए हैं। इस हरे-भरे टापू की शकल शंख-जैसी है। कहते हैं, पुराने जमाने में यह टापू भारत के साथ जुड़ा हुआ था, परन्तु बाद में सागर की लहरों ने इस मिलाने

वाली कड़ी को काट डाला, जिससे वह चारों ओर पानी से घिरकर टापू बन गया।

जिस स्थान पर यह जुड़ा हुआ था, वहां इस समय एक खाड़ी है। शुरू में इस खाड़ी को नावों से पार किया जाता था। बाद में आज से लगभग चार सौ बरस पहले कृष्णप्पनायकन नाम के एक छोटे-से राजा ने उसपर पत्थर का बहुत बड़ा पुल बनवाया। ढाई मील चौड़ी इस खाड़ी पर पुल बनाना आज के युग में भी आसान नहीं। उस समय तो सारा काम हाथ से ही होता था। पुल को बनाने में कितनी कठिनाई हुई होगी और कितना समय लगा होगा!

अंग्रेजों के आने के बाद उसपुल की जगह पर रेल का पुल बनाने का विचार हुआ। उस समय तक पुराना पत्थर का पुल लहरों की टक्कर से हिलकर टूट चुका था। एक जर्मन इंजीनियर की मदद से उस टूटे पुल पर रेल का एक सुंदर पुल बनवाया गया। इस समय यही पुल रामेश्वरम् को भारत से जोड़ता है। यह पुल देखने योग्य है। पुल के बीच के हिस्से को जरूरत पड़ने

पर ऊपर उठाया जा सकता है। चूंकि इसी खाड़ी से होकर लंका को जहाज जाते हैं, इसलिए पुल के इस हिस्से को ऊपर उठाना आवश्यक होता है। जहाज के आते ही मशीनों के सहारे पुल को उठा दिया जाता है। जहाज के निकल जाने पर यह हिस्सा फिर जुड़ जाता है, जिससे रेल के गुजरने का रास्ता बन जाता है।

रामेश्वरम् आनेवाले यात्री इस पुल को देखकर मुग्ध हो जाते हैं। पुल की बनावट बहुत सुंदर है। यहांपर समुद्र का पानी बड़ा साफ है। पुल के ऊपर जब रेलगाड़ी चलती है, तब यात्री समुद्र की तह तक बड़ी आसानी से देख सकते हैं।

दूर-दूर तक फैले हुए सागर के नीले पानी को देखकर क्षणभर के लिए यात्री मंत्रमुग्ध-सा हो जाता है। आंखें उस मनोरम दृश्य को देखते नहीं अघातीं।

इस स्थान पर दक्षिण से उत्तर की ओर हिंद-महासागर का पानी बहता दिखाई देता है। समुद्र में लहरें बहुत कम होती हैं। शांत महाशय को देखकर

यात्रियों को ऐसा लगता है, मानो वह किसी बड़ी नदी को पार कर रहे हों ।

स्थापत्य कला का अनुपम नमूना रामनाथजी का मंदिर

रामेश्वरम् शहर और रामनाथजी का मशहूर मंदिर इस टापू के उत्तर के छोर पर हैं। टापू के दक्षिणी कोने में धनुषकोटी नामक तीर्थ है, जहां हिंद महासागर से बंगाल की खाड़ी मिलती है। इसी स्थान को सेतुबंध कहते हैं। लोगों का विश्वास है कि श्रीराम ने लंका पर चढ़ाई करने के लिए समुद्र पर जो पुल

या सेतु बांधा था, वह इसी स्थान से आरंभ हुआ। इस कारण धनुषकोटी का धार्मिक महत्व बहुत है।

रामेश्वरम् शहर से करीब डेढ़ मील उत्तर-पूरब में गंधमादन पर्वत नाम की एक छोटी-सी पहाड़ी है। कहते हैं, हनुमानजी ने इसी पर्वत पर से समुद्र को लांघने के लिए छलांग मारी थी। बाद में राम ने लंका पर चढ़ाई करने के लिए यहींपर विशाल सेना संगठित की थी। इस पर्वत पर एक सुंदर मंदिर बना हुआ है, जहां श्रीराम के चरण-चिह्नों की पूजा की जाती है।

इस मंदिर की छत पर खड़े होकर रामेश्वरम् के विशाल टापू और उसे घेरे हुए समुद्र का मनोरम दृश्य देखा जा सकता है। दूर दक्षिण में धनुषकोटी, पश्चिम में पामबन तथा दक्षिण-पूरब में रामनाथजी का मंदिर दिखाई देते हैं। चारों ओर समुद्र का नीला जल। उसमें पाल खोले हुए राजहंसों की भांति चलनेवाली नावें। मीलों फैले हुए सफेद रेत के मैदान। बीच-बीच में नारियल के बगीचों की सुखद हरियाली

यात्रियों को ऐसा लगता है, मानो वह किसी बड़ी नदी को पार कर रहे हों।

स्थापत्य कला का अनुपम नमूना रामनाथजी का मंदिर

रामेश्वरम् शहर और रामनाथजी का मशहूर मंदिर इस टापू के उत्तर के छोर पर है। टापू के दक्षिणी कोने में धनुषकोटी नामक तीर्थ है, जहां हिंद महासागर से बंगाल की खाड़ी मिलती है। इसी स्थान को सेतुबंध कहते हैं। लोगों का विश्वास है कि श्रीराम ने लंका पर चढ़ाई करने के लिए समुद्र पर जो पुल

या सेतु बांधा था, वह इसी स्थान से आरंभ हुआ। इस कारण धनुषकोटी का धार्मिक महत्व बहुत है।

रामेश्वरम् शहर से करीब डेढ़ मील उत्तर-पूरब में गंधमादन पर्वत नाम की एक छोटी-सी पहाड़ी है। कहते हैं, हनुमानजी ने इसी पर्वत पर से समुद्र को लांघने के लिए छलांग मारी थी। बाद में राम ने लंका पर चढ़ाई करने के लिए यहींपर विशाल सेना संगठित की थी। इस पर्वत पर एक सुंदर मंदिर बना हुआ है, जहां श्रीराम के चरण-चिह्नों की पूजा की जाती है।

इस मंदिर की छत पर खड़े होकर रामेश्वरम् के विशाल टापू और उसे घेरे हुए समुद्र का मनोरम दृश्य देखा जा सकता है। दूर दक्षिण में धनुषकोटी, पश्चिम में पामबन तथा दक्षिण-पूरब में रामनाथजी का मंदिर दिखाई देते हैं। चारों ओर समुद्र का नीला जल। उसमें पाल खोले हुए राजहंसों की भांति चलनेवाली नावें। मीलों फैले हुए सफेद रेत के मैदान। बीच-बीच में नारियल के बगीचों की सुखद हरियाली

देखते-देखते जी नहीं अघाता। बड़ा ही रमणीक दृश्य है वह!

: २ :

रामेश्वरम् की यात्रा करनेवालों को एक बात देखकर अचरज और हर्ष होता है। वह है हर जगह राम-कहानी की गूंज। रामेश्वरम् के विशाल टापू की चप्पा-चप्पा भूमि राम की कहानी से जुड़ी हुई है। अमुक जगह पर राम ने सीताजी की प्यास बुझाने के लिए धनुष की नोक से कुआं खोदा था। अमुक जगह पर उन्होंने सेनानायकों से सलाह की थी। अमुक स्थान पर सीताजी ने अग्नि-प्रवेश किया था। किसी अन्य स्थान पर श्रीराम ने जटाओं से छुट्टी ली थीं। ऐसी सैकड़ों कहानियां प्रचलित हैं।

रामेश्वरम् के विख्यात मंदिर की स्थापना के बारे में यह रोचक कहानी कही जाती है।

सीताजी को छुड़ाने के लिए राम ने लंका पर चढ़ाई की थी। उन्होंने लड़ाई के बिना सीताजी को छुड़वाने का बहुत प्रयत्न किया, पर जब सफलता न

मिली तो विवश होकर उन्होंने युद्ध किया। इस युद्ध में रावण और उसके सब साथी राक्षस मारे गये। रावण मारा तो गया; लेकिन उसका भी प्रभाव कम नहीं था।

वह पुलस्त्य महर्षि का नाती था। चारों वेदों का जाननेवाला था और था शिवजी का बड़ा भक्त। इस कारण राम को उसे मारने के बाद बड़ा खेद हुआ। ब्रह्म-हत्या का पाप उन्हें लग गया। इस पाप को धोने के लिए उन्होंने रामेश्वरम् में शिवलिंग की स्थापना करने का निश्चय किया।

यह निश्चय करने के बाद श्रीराम ने हनुमान को आज्ञा दी कि काशी जाकर वहां से एक शिवलिंग ले आओ। हनुमान पवन-सुत थे। सो बड़े वेग से आकाश-मार्ग से चल पड़े। उन्हें अपनी शक्ति का बड़ा अभिमान था। समझते थे कि कोई काम ऐसा नहीं, जो मुझसे न हो सके। उन्होंने राम को आश्वासन दिया कि समय से पहले ही मैं काशी से शिवलिंग लेकर आ जाऊंगा।

परंतु वास्तव में हुआ कुछ और ही। शिवलिंग की स्थापना की नियत घड़ी पास आगई, पर हनुमान का कहीं पता न था। सब लोग आकाश की ओर देख रहे थे और चिंतित हो रहे थे।

जब सीताजी ने देखा कि हनुमान के लौटने में देर हो रही है, तो उन्होंने समुद्र के किनारे के रेत को मुट्ठी में बांधकर एक शिवलिंग बना दिया। यह देखकर राम बहुत प्रसन्न हुए और नियत समय पर इसी शिवलिंग की स्थापना कर दी। छोटे आकार का यही शिवलिंग रामनाथ कहलाता है।

शिवलिंग की स्थापना हुई ही थी कि इतने में हनुमान काशी से काले पत्थर का बड़े आकार का शिवलिंग लेकर आ पहुंचे। जब उन्होंने देखा कि उनके आने से पहले ही सारा काम पूरा हो चुका है तो उन्हें बड़ा क्रोध आया। वह राम के भक्त थे, दास थे। परंतु उस समय क्रोध के आवेश में उन्होंने आव देखा न ताव, राम के स्थापित किये हुए शिवलिंग को अपनी पूंछ से लपेटकर उखाड़ने का प्रयत्न करने लगे। उनका

क्रोध और यह काम देखकर राम मुस्कराए, पर बोले कुछ नहीं।

हनुमान ने अपनी सारी शक्ति लगा डाली, फिर भी यह शिवलिंग टस-से-मस न हुआ। तब उन्होंने बड़ा रूप धारण कर लिया। उनका शरीर पाताल से लेकर आकाश तक फैल गया। इस विशाल शरीर से उन्होंने उस शिवलिंग को फिर उखाड़ने का प्रयत्न किया, परंतु नतीजा कोई न निकला।

तब हनुमान की आंखें खुलीं। उनका घमंड चूर होगया। राम की लीला उनकी समझ में आगई। उन्होंने अपना बड़ा रूप छोड़कर फिर छोटा रूप धरा और राम के चरणों में गिर पड़े। उनकी आंखों से आंसू बहने लगे।

उनकी यह दशा देखकर सीताजी का हृदय दया से भर आया। उन्होंने राम की ओर देखा। राम ने हनुमान को उठाकर छाती से लगा लिया और बोले, "मित्र, तुम बेकार गुस्से में आगये। हमने रामनाथ की प्रतिष्ठा कर दी तो क्या हुआ? लाओ, तुम्हारे

[illegible] को स्थापना किये वेते हैं।"

[illegible] उन्होंने काशी से लाए शिवलिंग को भी पहले प्रतिष्ठित छोटे शिवलिंग के पास स्थापित कर दिया। साथ ही उन्होंने आवेश दिया कि हनुमान द्वारा लाए गये विश्वनाथजी की ही पूजा मुख्य रूप से हो। दूसरे शिवलिंग की पूजा खास मौकों पर ही हो। राम की इस उदारता से हनुमान तथा दूसरे सब लोग गद्‌गद्‌ हो गये।

आज भी रामेश्वरम् के मंदिर में दो शिवलिंग आस-पास एक साथ प्रतिष्ठित हैं। छोटे आकार का स्फटिक लिंग, जिसकी स्थापना भगवान राम ने की थी, ध्यान से देखने पर ही दिखाई देता है। परंतु हनुमानजी का लाया हुआ काले पत्थर का बड़ा शिव-लिंग प्रमुख दिखाई पड़ता है। स्फटिक लिंग रामनाथ कहलाता है और काले पत्थरवाला लिंग विश्वनाथ। इनमें विश्वनाथ की ही पूजा मुख्य रूप से [illegible]

रामनाथ तो विशेष अव[illegible]

रामेश्वरम् के मंदि[illegible]

की मूर्तियां हैं, उसी प्रकार देवी पार्वती की भी मूर्तियां अलग-अलग स्थापित की गई हैं। देवी की एक मूर्ति पर्वतवर्द्धिनी कहलाती है, दूसरी विशालाक्षी।

हनुमानजीवाली घटना की याद दिलाने के लिए मंदिर के पूर्व द्वार के बाहर हनुमान की एक विशाल मूर्ति अलग मंदिर में स्थापित है।

रामेश्वरम् का मंदिर है तो शिवजी का, परंतु उसके अंदर कई अन्य मंदिर भी हैं। सेतुमाधव कहलाने वाले भगवान विष्णु का मंदिर इनमें प्रमुख है।

: ३ :

रामनाथ के मंदिर के अंदर और बाहर अनेक पवित्र तीर्थ हैं। इनमें प्रधान तीर्थों की संख्या बाईस बताई जाती है। ये वास्तवमें मीठे जलके अलग-अलग कुएं हैं। 'कोटितीर्थ' जैसे एक-दो तालाब भी हैं। इन तीर्थों में स्नान करना बड़ा फलदायक पाप-निवारक समझा जाता है। वैज्ञानिकों का कहना है कि इन तीर्थों में अलग-अलग धातुएं मिली हुई हैं। इस कारण उनमें नहाने से शरीर के रोग दूर हो जाते हैं और उसमें नई ताकत आ जाती है।

विश्वनाथजी की स्थापना किये देते हैं।"

यह कहकर उन्होंने काशी से लाए शिवलिंग को भी पहले प्रतिष्ठित छोटे शिवलिंग के पास स्थापित कर दिया। साथ ही उन्होंने आदेश दिया कि हनुमान द्वारा लाए गये विश्वनाथजी की ही पूजा मुख्य रूप से हो। दूसरे शिवलिंग की पूजा खास मौकों पर ही हो। राम की इस उदारता से हनुमान तथा दूसरे सब लोग गद्-गद् हो गये।

आज भी रामेश्वरम् के मंदिर में दो शिवलिंग आस-पास एक साथ प्रतिष्ठित हैं। छोटे आकार का स्फटिक लिंग, जिसकी स्थापना भगवान राम ने की थी, ध्यान से देखने पर ही दिखाई देता है। परंतु हनुमानजी का लाया हुआ काले पत्थर का बड़ा शिव-लिंग प्रमुख दिखाई पड़ता है। स्फटिक लिंग रामनाथ कहलाता है और काले पत्थरवाला लिंग विश्वनाथ। इनमें विश्वनाथ की ही पूजा मुख्य रूप से होती है। रामनाथ तो विशेष अवसरों पर ही पूजे जाते हैं।

रामेश्वरम् के मंदिर में जिस प्रकार शिवजी की

मूर्तियां हैं, उसी प्रकार देवी पार्वती की भी मूर्तियां
ाग-अलग स्थापित की गई हैं। देवी की एक मूर्ति
तवर्द्धिनी कहलाती है, दूसरी विशालाक्षी।

हनुमानजीवाली घटना की याद दिलाने के लिए
ंदर के पूर्व द्वार के बाहर हनुमान की एक विशाल
त अलग मंदिर में स्थापित है।

रामेश्वरम् का मंदिर है तो शिवजी का, परंतु
के अंदर कई अन्य मंदिर भी हैं। सेतुमाधव कह-
ने वाले भगवान विष्णु का मंदिर इनमें प्रमुख है।

: ३ :

रामनाथ के मंदिर के अंदर और बाहर अनेक पवित्र
र्थ हैं। इनमें प्रधान तीर्थों की संख्या बाईस बताई जाती
। ये वास्तवमें मीठे जलके अलग-अलग कुएं हैं। 'कोटितीर्थ'
से एक-दो तालाब भी हैं। इन तीर्थों में स्नान करना
ड़ा फलदायक पाप-निवारक समझा जाता है। वैज्ञा-
कों का कहना है कि इन तीर्थों में अलग-अलग धातुएं
ली हुई हैं। इस कारण उनमें नहाने से शरीर के रोग
र हो जाते हैं और उसमें नई ताकत आ जाती है।

दूर-दूर से आनेवाले यात्री कोटितीर्थ तालाब का जल घड़ों, कलशों आदि में भरकर ले जाते हैं। यह विश्वास किया जाता है कि इस जल से कई रोगों का इलाज हो सकता है।

रामेश्वरम् के मंदिर के बाहर भी दूर-दूर तक कई पुण्य-तीर्थ हैं। प्रत्येक तीर्थ के बारे में अलग-अलग कथाएं हैं। ऐसे तीर्थों में 'विल्लूरणि तीर्थ' नामक कुआं दर्शनीय है।

रामेश्वरम् से करीब तीन मील पूरब में एक गांव है, जिसका नामक तंगचिमडम है। यह गांव रेल के किनारे ही बसा है। यहां स्टेशन के पास समुद्र में एक तीर्थकुंड है। यही विल्लूरणि तीर्थ कहलाता है। समुद्र के खारे पानी के बीच में बने इस कुएं में से मीठा जल कैसे निकलता है, यह बड़े ही अचंभे की बात है।

कहा जाता है कि एक बार सीताजी को बड़ी प्यास लगी। पास में समुद्र को छोड़कर और कहीं पानी न था, इसलिए राम ने अपने धनुष की नोक से

कुंड खोदा था।

जिस तरह रामेश्वरम् के प्रत्येक तीर्थ के साथ राम की कोई-न-कोई कहानी जुड़ी हुई है, उसी तरह उस टापू के हरेक मंदिर के साथ भी भगवान् राम का संबंध जोड़ा जाता है। इनमें कुछ कहानियां तो बहुत ही मधुर हैं। तंगचिमडम स्टेशन के पास एक जीर्ण मंदिर है। उसे 'एकांत राम का मंदिर' कहते हैं। कहा जाता है कि सेतु का निर्माण करने के बाद लंका पर चढ़ाई करने की योजना बनाई गई। शुरू में राम ने सेतु के पास ही इसके लिए सेनानायकों की सभा बुलाई थी। परंतु आसपास समुद्र की लहरों और वानर सैनिकों का शोर इतना था कि राम परेशान हो गये। तब भगवान राम ने हनुमान से कहा कि सभा के लिए पास में कहीं कोई एकांत स्थान तलाश करो। हनुमान ने बहुत ढूंढ़ने के बाद, जंगल के बीच एक बढ़िया जगह खोज निकाली। राम उसी स्थान पर सेनापतियों की सभाएं किया करते थे।

इस मंदिर का अब बहुत बुरा हाल है। राम-

'सीताकुंड' कहलाता है।

यहांपर समुद्र का किनारा आधा गोलाकार है। सागर एकदम शांत है। उसमें लहरें बहुत कम उठती हैं। इस कारण देखने में यह एक तालाब-सा लगता है। यहांपर बिना किसी खतरे के स्नान किया जा सकता है। यात्री इस तीर्थ में स्नान करने के बाद सोने-चांदी के सिक्के, गहने आदि जल में चढ़ा आते हैं। उन्हें निकाल लेने के लिए तैराक लड़कों और युवकों का एक दल किनारे पर सदा तैयार खड़ा रहता है।

: ४ :

रामेश्वरम् से २३ मील दक्षिण में धनुषकोटी नामक प्रसिद्ध तीर्थ है। रत्नाकर कहलानेवाली बंगाल की खाड़ी यहींपर हिंद महासागर से मिलती है। पामबन स्टेशन से धनुषकोटी तक की रेल-यात्रा में जो आनंद आता है, उसका वर्णन करना कठिन है। रेतीले मैदान पर रेल की पटरी बनी हुई है। उसके दोनों ओर नीले सागर लहरें मार रहे हैं। जल की

छूती हुई बहनेवाली ठंडी हवा, उस कड़ी धूप में बड़ी सुहावनी लगती है। दूर सागर की गोद में पाल फैला-कर चलनेवाली मछुओं की नावें कितनी सुहावनी लगती हैं! एक बार इस रास्ते पर यात्रा करनेवाले जीवन भर उसे नहीं भूल सकते।

धनुषकोटी का धार्मिक महत्व तो है ही, एक और दृष्टि से भी उसका बड़ा महत्व है। भारत से लंका आने-जाने वाले यात्री यहीं से जहाज पर चढ़ते-उतरते हैं। धनुषकोटी का बंदरगाह बहुत छोटा है और छोटे जहाज ही उसमें आ सकते हैं। फिर भी भारत से लंका जाने और लंका से भारत आने का प्रधान द्वार होने के कारण यह बंदरगाह बड़ा महत्वपूर्ण है। भारत सरकार के चुंगी-विभाग के अधिकारी धनुषकोटी को आबाद किये हुए हैं। रेतीले मैदान के बीच बने हुए उनके नए ढंग के मकान देखने में बड़े विचित्र लगते हैं। दिन के समय धूप बहुत तेज होने के कारण लोग घरों या दफ्तरों के अंदर बंद रहते हैं। शाम होने के बाद और सुबह के समय वहां कुछ चहल-पहल दिखाई देती है।

जाय तो मालूम होगा कि बेल-बूटे की कारीगरी हर खंभे पर अलग-अलग है।

रामनाथ की मूर्ति के चारों ओर परिक्रमा करने के लिए तीन प्राकार बने हुए हैं। इनमें तीसरा प्राकार, सौ साल पहले बनकर पूरा हुआ। इस प्राकार की लंबाई चार सौ फुट से अधिक है। दोनों ओर पांच फुट ऊंचा और करीब आठ फुट चौड़ा चबूतरा बना हुआ है। चबूतरों के एक ओर पत्थर के बड़े-बड़े खंभों की लंबी कतारें खड़ी हैं। प्राकार के एक सिरे पर खड़े होकर देखने पर ऐसा लगता है, मानो सैकड़ों तोरण-द्वार दर्शक का स्वागत करने के लिए बनाए गये हैं। इन खंभों की अद्भुत कारीगरी देखकर विदेशी भी दंग रह जाते हैं।

यहांपर एक बात ध्यान में रखना जरूरी है। वह यह कि रामनाथ के मंदिर के चारों ओर दूर तक कोई पहाड़ नहीं है, जहां से पत्थर आसानी से लाए जा सकें। गंधमादन पर्वत तो नाममात्र का है। वास्तव में यह एक टीला है और उसमें से एक विशाल

मंदिर के लिए जरूरी पत्थर नहीं निकल सकते। रामेश्वरम् के मंदिर में जो कई लाख टन के पत्थर लगे हैं, वे सब बहुत दूर-दूर से नावों में लादकर लाए गये हैं। रामनाथजी के मंदिर के भीतरी भाग में एक तरह का चिकना काला पत्थर लगा है। कहते हैं, ये सब पत्थर लंका से लाए गये थे। गहरी श्रद्धा, और सच्ची भक्ति के बिना इतना कठिन काम कभी पूरा नहीं हो सकता था।

रामेश्वरम् के विशाल मंदिर को बनवाने और उसकी रक्षा करने में रामनाथपुरम् नामक छोटी रियासत के राजाओं का बड़ा हाथ रहा। आजकल यह रियासत मद्रास राज्य में शामिल हो गई है, पर किसी जमाने में यह काफी दूर तक फैली हुई थी। इस रियासत के नरेश अपने को 'सेतुपति' कहते थे। इस उपाधि के पीछे एक मनोरंजक कहानी है।

रामायण के पाठकों को केवट गुह की कहानी याद होगी। जब राम वनवास के लिए निकले, तब इसी केवट ने अपनी नाव में बिठाकर उनको गंगा पार

जो लोग धर्मशालाओं आदि में ठहरना नहीं चाहते, वे यहां के होटलों में कमरे किराये पर ले सकते हैं।

भारत के हर तीर्थ-स्थान पर पंडे होते हैं, जो यात्रियों को चैन से बैठने नहीं देते। रामेश्वरम् में भी बहुत-से पंडे हैं, परंतु यहांपर उनका अधिक प्रभाव नहीं है। मंदिर का प्रबंध पांच सदस्यों की एक समिति के हाथों में है। पंडों के अलावा बहुत-से ऐसे लोग हैं जो हर स्थान की महिमा बताते जाते हैं।

रामेश्वरम् समुद्र से घिरा है, इस कारण टापू के किनारे के साथ-साथ मछुओं की बस्तियां फैली हुई हैं। इन मछुओं में ईसाइयों और मुसलमानों की संख्या हिंदुओं से अधिक है। रामेश्वरम् के आस-पास के सागर में तरह-तरह की छोटी-बड़ी बहुत-सी मछलियां मिलती हैं। इन मछलियों की मांग भी बड़ी रहती है। इस कारण मछली मारने का व्यवसाय इस इलाके में बहुत विकसित हुआ है। हजारों लोग इसी धंधे से पेट भरते हैं। समुद्र-तट पर होने पर भी रामेश्वरम् की

धरती बड़ी उपजाऊ है। टापू भर में हर जगह मीठे जल के सोते धरती के भीतर मिलते हैं। इस कारण कुएं खोदकर उनके जल से खेतों की सिंचाई करना आसान होता है। इसलिए समुद्र-तट से जरा भीतर की ओर किसानों की कई बस्तियां बसी हुई हैं। नारियल के बगीचे तो सब ओर लहलहाते हैं, और भी कई तरह के फल देनेवाले पेड़, साग-सब्जी की क्यारियां और कहीं-कहीं धान के भी खेत दिखाई देते हैं।

रामझरोखा

रामेश्वरम् की बस्ती में अधिकतर मंदिर के या यात्रियों के काम से जीविका चलानेवाले पुरोहित,

जो लोग धर्मशालाओं आदि में ठहरना नहीं चाहते, वे वहां के होटलों में कमरे किराये पर ले सकते हैं।

भारत के हर तीर्थ-स्थान पर पंडे होते हैं, जो यात्रियों को चैन से बैठने नहीं देते। रामेश्वरम् में भी बहुत-से पंडे हैं, परंतु यहांपर उनका अधिक प्रभाव नहीं है। मंदिर का प्रबंध पांच सदस्यों की एक समिति के हाथों में है। पंडों के अलावा बहुत-से ऐसे लोग हैं जो हर स्थान की महिमा बताते जाते हैं।

रामेश्वरम् समुद्र से घिरा है, इस कारण टापू के किनारे के साथ-साथ मछुओं की बस्तियां फैली हुई हैं। इन मछुओं में ईसाइयों और मुसलमानों की संख्या हिंदुओं से अधिक है। रामेश्वरम् के आस-पास के सागर में तरह-तरह की छोटी-बड़ी बहुत-सी मछलियां मिलती हैं। इन मछलियों की मांग भी बड़ी रहती है। इस कारण मछली मारने का व्यवसाय इस इलाके में बहुत विकसित हुआ है। हजारों लोग इसी धंधे से पेट भरते हैं। समुद्र-तट पर होने पर भी रामेश्वरम् की

धरती बड़ी उपजाऊ है। टापू भर में हर जगह मीठे जल के सोते धरती के भीतर मिलते हैं। इस कारण कुएं खोदकर उनके जल से खेतों की सिंचाई करना आसान होता है। इसलिए समुद्र-तट से जरा भीतर की ओर किसानों की कई बस्तियां बसी हुई हैं। नारियल के बगीचे तो सब ओर लहलहाते हैं, और भी कई तरह के फल देनेवाले पेड़, साग-सब्जी की क्यारियां और कहीं-कहीं धान के भी खेत दिखाई देते हैं।

रामझरोखा

रामेश्वरम् की बस्ती में अधिकतर मंदिर के या यात्रियों के काम से जीविका चलानेवाले पुरोहित,

व्यापारी, डाक्टर, अध्यापक आदि लोग बसे हुए हैं।

रामेश्वरम् के समुद्र में तरह-तरह की कौड़ियां, शंख और सीपें मिलती हैं। कहीं-कहीं सफेद रंग का बढ़िया मूंगा भी मिलता है। यहां मिलनेवाली बड़ी कौड़ियों पर तरह-तरह के चित्र छापकर व्यापारी लोग यात्रियों को बेचते हैं। रामेश्वरम् की यादगार के रूप में यात्री लोग इनको चाव से खरीदते हैं।

रामेश्वरम् केवल धार्मिक महत्त्व का तीर्थ ही नहीं, प्राकृतिक सौंदर्य की दृष्टि से भी दर्शनीय है। पामबन के पुल पर से समुद्र का दृश्य, गंधमादन पर्वत से सारे टापू का दृश्य और धनुषकोटी में दोनों सागरों के मनोरम संगम का दृश्य बार-बार आंखों के आगे चक्कर लगाते रहते हैं।

o